निर्बुद्धि का राज-काज

गोपाल दास

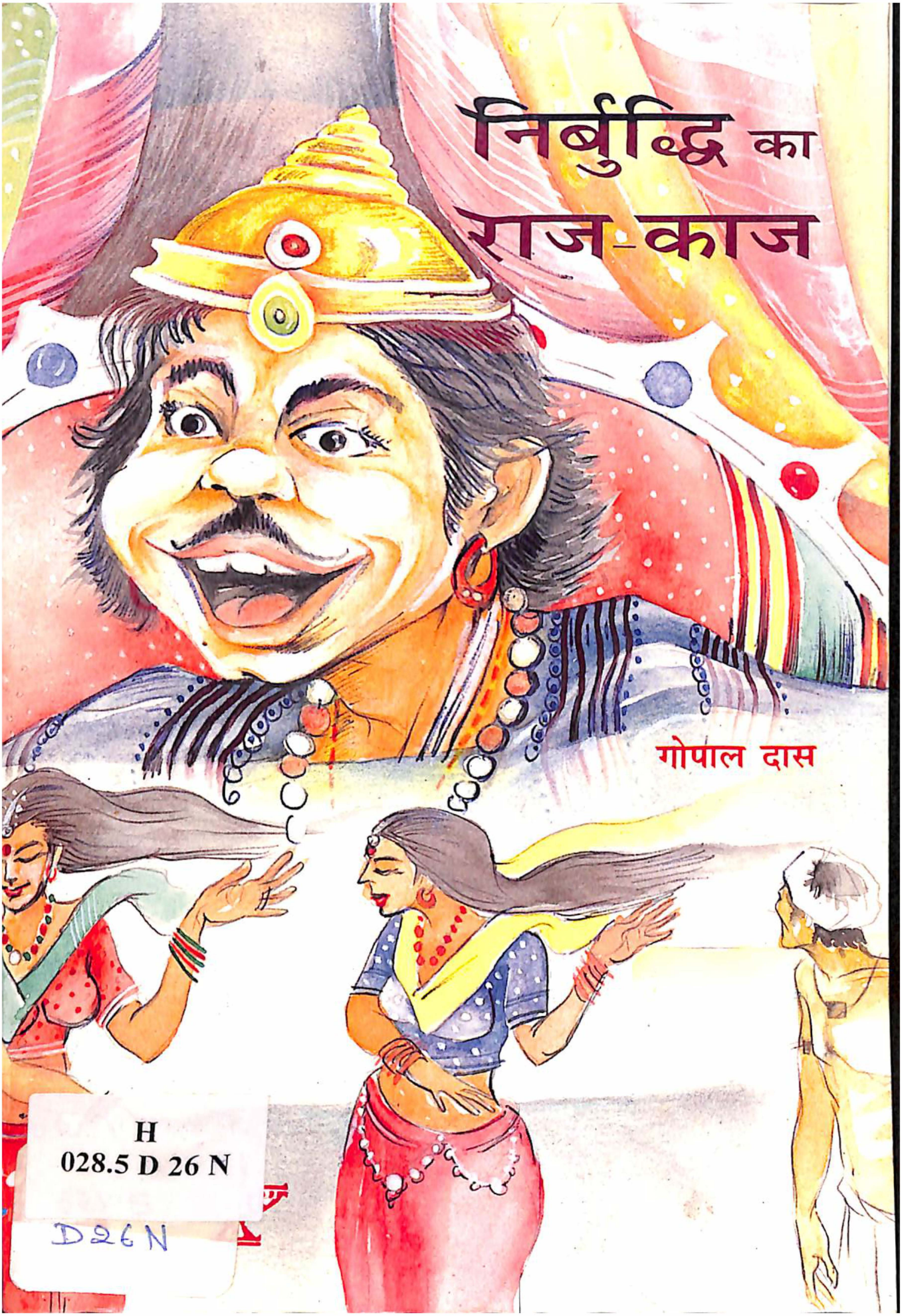

H
028.5 D 26 N
D26N

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

निर्बुद्धि का राज-काज

निर्बुद्धि का राज-काज

गोपाल दास

साहित्य अकादेमी

Nirbuddhi Ka Raaj Kaaj : Stories for Children by Gopal Das in Hindi, Sahitya Akademi, New Delhi (2003), Rs. 30.

© साहित्य अकादेमी
प्रथम संस्करण : 1996
पुनर्मुद्रण : 2003

Indian Institute of Advanced Study
SHIMLA

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : स्वाति, मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 1

Library IIAS, Shimla
H 028.5 D 26 N
00115977

क्षेत्रीय कार्यालय
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मु
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंज़िल, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कोलकाता 700 053
सीआईटी कैम्पस, टी.टी.टी.आई. पोस्ट, तरामणि, चेन्नई 600 113
सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर मार्ग, बंगलौर 560 001

H
028.5
D 26 N

ISBN 81-7201-996-3

Indian Institute of Advanced Study
115977
17.11.04
SHIMLA

मूल्य : तीस रुपये

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110 032

अनुक्रम

1.	सोनाबाई	-	7
2.	उसका भाग्य जागा	-	17
3.	रबाड़ी से राजा	-	26
4.	चतुर किसान और लोभी व्यापारी	-	36
5.	पंजफूलरानी	-	43
6.	फ़ातेह ख़ाँ उर्फ़ फत्तू का कमाल	-	52
7.	बुद्धू कौन, सयाना कौन	-	59
8.	एक था सूरज, एक था चाँद	-	63
9.	एक-से-बढ़कर एक	-	73
10.	निर्बुद्धि का राज-काज	-	82

1

सोनाबाई

वह सूरत नगर का एक बड़ा व्यापारी था। नाम था दान्ता सेठ। चाँदी-सोने, हीरे-मोती का कारोबार था। देश-विदेश माल आता जाता था। सुधड़ घरवाली थी। सात बेटे थे। सब सुन्दर और होनहार। उनका ब्याह हो चुका था। बहुएँ भी एक से एक धनी परिवार की थीं।

एक ही कमी थी। कोई बेटी नहीं थी। माँ मंदिर जाती, बाप दान-पुण्य करता। हवेली में दिन-रात पूजा-पाठ होता रहता।

भगवान ने सुन ली। बेटी का जन्म हुआ। ब्राह्मण भोज हुआ। दक्षिणा के लिये थैलियाँ खुल गईं। उसका कुंदन-सा रंग था। नाम रखा गया सोनाबाई।

उसका सोने का पालना था। रेशम की डोर थी। भाभियाँ झुलाती रहती थीं। माँ रोज़ सवेरे उस पर मोतियों की एक माला वारती। वे मोती भिखमंगों में बँटवा दिये जाते थे।

सोनाबाई आठ साल की हो गई। देखने में छोटी अप्सरा लगती थी। बोलती थी तो कोयल कूकती थी, हँसती थी तो मोती-से फूल झरते थे। दिन भर झूले में झूलती रहती थी। उसकी हर माँग पूरी हाती थी, और एकदम। माँ, बाप, भाइयों की लाड़ली जो थी। भाभियों पर हुकम चलाती थी। वे उससे कुढ़ने लगी थीं। सास-ससुर के आगे मुँह नहीं खोल पाती थीं।

फिर, सब उलटा हो गया।

नगर में महामारी फैली। माँ-बाप स्वर्ग सिधार गये। भाइयों पर व्यापार का बोझ बढ़ा। सवेरे से शाम तक उसी में लगे रहते। फिर भी बहन के लाड़ में कोई कमी नहीं आई। उसे सिर आँखों पर रखते।

भाभियों की कुढ़न और बढ़ने लगी थी।

सोना इससे अनजान थी।

व्यापार के लिये भाइयों को विदेश जाना पड़ा। उनकी अपनी पालदार नौका थी। रवाना होने से पहले पत्नियों को आदेश दिया कि उनके पीछे सोना की देखभाल में कोई चूक न हो। सबने सिर हिला दिया।

उन्होंने झूठमूठ को सिर हिला दिया था।

भाइयों के जाते ही भाभियों ने सोना पर अपनी भड़ास निकालनी शुरू कर दी। उससे नौकरों का काम लेने लगीं। भांडा-बरतन, झाडू-बुहारी।

"ननदजी, बहुत झूले में झूल लीं। अब कुछ हाथ पैर भी हिलाओ।"

सोना से नहीं होता, बिगड़ जाता, वह अलसा जाती तो डाँट-डपट करतीं, कभी धप-धौल भी जमा देतीं। उसके आँसू आते, वे मुसकातीं। सोना का जीवन दूभर हो गया।

एक दिन हुकम हुआ, जंगल से लकड़ियाँ बीनकर लाओ। लकड़ियाँ सीली न हों। उसने लकड़ियाँ बाँधने को रस्सी माँगी। मना कर दिया। हाथों की कैंची बना कर कसना और सिर पर ढोकर लाना। एक और शर्त लगा दी। गट्ठर छोटा न हो, नहीं तो दुबारा जाना होगा।

जंगल में लकड़ियाँ बीनकर सोना ने एक ढेर बनाया। जैसे ही सिर पर धरने को उठाया, वे फिसल गईं। हाथ में दो चार बचीं। उसने फिर ढेर बनाया, फिर उठाया, फिर वे फिसल गईं ऐसा कई बार हुआ। हारकर वह धरती पर बैठ गई और रोने लगी।

पास में एक साँप का बिल था। उसने सुना, वह बाहर निकला, रोने का कारण पूछा।

सोना विलाप करने लगी :

बड़ा व्यापारी था दान्ता सेठ।
सेठ के थे सात बेटे,
अन्त में जन्मी एक बेटी,
नाम था उसका सोनाबाई।
प्यार उसे सारा घर करता,
रोज़ सवेरे माँ वारती
उस पर एक मोती की माला।

माँ-बाप हुए ईश्वर को प्यारे,
व्यापार को भाई विदेश सिधारे,
भाभियाँ उसे सताती हैं,
जीवन नरक बनाती हैं,
रोती रहती सोनाबाई।

"नाग देवता, मेरी भाभियों ने मुझे लकड़ियाँ लाने जंगल भेजा है। बाँधने को रस्सी नहीं दी है। लकड़ियाँ कम हुईं तो बरजेंगी।"

इस दर्दभरी कथा से साँप का दिल पसीज गया। उसने सोना को धीर बँधाई।

"बेटी, मैं सीधा लेट जाता हूँ। रस्सी बन जायेगी। मेरे तन पर तू गट्ठर रख देना। मैं उसे कुंडल मार कर कस लूँगा। लकड़ियाँ बँधी रहेंगी। तू गट्ठर उठाकर घर ले चलना।"

सोना ने वैसा ही किया।

जब उसने गट्ठर लाकर घर के आँगन में रखा, भाभियों के लिये यह पहेली बन गई कि रस्सी बिना लकड़ियाँ बँधी कैसे रहीं। गट्ठर धरती पर रखते ही साँप रेंगकर बाहर निकल गया था। भाभियाँ उसे देख नहीं पाई थीं।

सोना ने मन-ही-मन नाग देवता को धन्यवाद किया।

यह तो शुरूआत थी। सोना को अभी और परीक्षाओं से गुज़रना था।

घर में एक दुलाई थी। बिलकुल चीकट। सारी घी और तेल में पुती हुई।

भाभियों ने कहा, सोना समुद्र के किनारे ले जाये और उसे बिलकुल साफ़ धोकर लाये। कहीं मैल न रहे। सोना ने साबुन माँगा। उसे झिड़क दिया। अपने हाथों से कूटे।

दुलाई भारी थी। सोना से उठाये न उठी। वह उसे घसीटती हुई समुद्र तक ले गई। रास्ते की कीचड़ और धूल उसमें और समा गई। उसे पानी में डाल दिया। रास्ते में उसने लकड़ी का एक डंडा उठा लिया था। उससे दुलाई को पीटने लगी। मैल निकलनी न थी, न निकली। हथेलियों में सिर भरकर और कोहनियों को घुटनों पर टेककर वह बिलखने लगी।

उधर से सारस पक्षियों का एक झुण्ड उड़ता हुआ जा रहा था। सोना को बिलखते देखकर धरती पर उतरा। उसके बिलखने का कारण पूछा। सोना विलाप करने लगी :

बड़ा व्यापारी था दान्ता सेठ।
सेठ के थे सात बेटे,
अन्त में जन्मी एक बेटी........

सोना ने दुलाई धोने की बात बताई। सारस पक्षियों को दया उमड़ी। उनका मुखिया बोला : "तुम्हारा काम हम कर देंगे। तुम बस, दुलाई को पानी में खींच दो और फिर किनारे पर बैठकर देखो।"

सारस पक्षी दुलाई को अपने डैनों से पीटने लगे। अपनी चोंचों में भर कर दुलाई को उलटते, पलटते जाते। थोड़ी देर में काम पूरा हो गया।

मुखिया सोना के पास आया। बोला, "बेटी, दुलाई को पानी से खींचकर अब रेत पर सुखा दो। और हाँ, रो तो बहुत लीं। अब एक बार हँसो। हम तुम्हारे मोती से दाँत तो देखें।"

वह खिलखिला पड़ी। सारस पंछी उड़ गये। उसने मन-ही-मन धन्यवाद दिया।

दुलाई नयी-सी चमक रही थी। हलकी भी हो गई थी। सोना ने उसे सिर पर लादा और उछलती-कूदती घर आई।

भाभियों ने और कठोर दण्ड देने की ठानी।

धान की नयी फ़सल आई थी। बड़ी भाभी चावल बीन रही थी। उसने छोटियों को इशारे से बुलाया। कान में कुछ कहा। सबने सिर हिलाकर हामी भरी। छोटी भाभी एक बोरी में एक पसेरी चावल लाई और दूसरी एक पसेरी दाल। सोना को आवाज़ दी।

"देखो, इन् बोरियों में एक-एक पसेरी चावल और दाल हैं। इन्हें बाहर बाड़े में ले जाओ और सूरज डूबने से पहले बीन लाओ। एक भी दाना इध ार-उधर न हो। सब गिने हुए हैं। भूल-चूक पर दण्ड मिलेगा।"

सोना ने अपने जीवन में दो दाने नहीं बीने थे। वह दो पसेरी कैसे बीनती? बोरियाँ उठा कर बाहर बाड़े के एक छायादार पेड़ के नीचे रख दीं और वहीं बैठ गई। बोरियों के मुँह खोले। पेड़ पर बैठी चिड़ियाँ चहचहा उठीं। वह उन्हें देखने लगी। कभी वह भी मुक्त चिड़कोली थी। इसी बाड़े में चहचहाती थी। आज पंख कट गये हैं, गीत सूख गये हैं। उसका गला भर आया। वह फूट-फूटकर विलाप करने लगी :

बड़ा व्यापारी था दान्ता सेठ।
सेठ के थे सात बेटे,
अन्त में जन्मी एक बेटी........

चिड़ियों का चहचहाना थम गया। एक चिड़िया उड़कर उसके पास आई।

"क्यों रो रही हो सोनाबैन ?"

"तुम मुझे जानती हो ?"

"हम तुम्हारे बाबुल की बगिया की चिड़ियाँ हैं। इस पेड़ पर हमारा बसेरा है। तुम्हें कैसे नहीं जानेंगी ? किन्तु आज तुम्हारे कण्ठ में रुदन कैसा ?"

सोना ने अपनी पीड़ा सुनाई। चिड़िया ने ढाढ़स बँधाया : "सोनाबैन आप चिन्ता न करें। आप बस, इन बोरियों के दाने बिखेर दें। यह काम अभी हुए जाता है। आप के गले में शहद है। जितने हम काम करें, आप कोई गाना सुनाती रहें।"

चिड़िया ने एक हूक भरके अन्य चिड़ियों को भी नीचे बुला लिया।

सोना गा रही थी :

बाबुल तेरे अम्बुआ की चिड़िया,
मेरे बीर गये परदेस।

चिड़ियाँ दाल-चावल बीन रही थीं। जैसे ही गाना समाप्त हुआ, उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया था। दाल-चावल के बीने हुए ढेर अलग-अलग रखे थे। सोना ने झटपट बोरियों में भरे और घर लाकर भाभियों के सामने रख दिये।

बड़ी भाभी ने बिना गिने शोर मचाया : "इनमें दाल के सौ दाने कम हैं। उन्हें ढूँढ़कर लाओ।"

सोना बाहर जाने को मुड़ ही रही थी कि चिड़ियाँ फरफराती हुई अंदर आईं और चोंचों में भरे दाने ज़मीन पर बिखेर गईं। सोना ने गिने। वे पूरे सौ थे, एक कम न ज़्यादा। बड़ी भाभी का मुँह बंद हो गया।

सोना ने चिड़ियों को मन-ही-मन धन्यवाद दिया।

भाभियाँ हैरान थीं। उनका कोई वार नहीं बैठ रहा था।

मँझली भाभी की कमर में दर्द रहता था। वैद्य ने बताया था, शेरनी के दूध से मालिश की जाये तभी ठीक हो सकता है। यह काम सोना को सौंपा गया। उसके हाथ में एक गागर थमा कर शेरनी का दूध लाने जंगल में भेज दिया गया।

भाभियों के अत्याचार से सोना तंग आ गई थी। उसे जीवन से कोई मोह नहीं रहा था। वह निडर जंगल में घुस गई। इस छोर से उस छोर

तक चक्कर लगा आई। कोई शेरनी नहीं मिली। भूख-प्यास सताने लगी थी। थक भी गई थी। एक छायादार कोने में सुस्ताने लेट गई। विलाप के बोल होठों से फूटने लगे :

बड़ा व्यापारी था दान्ता सेठ।
उसके थे सात बेटे,
अन्त में जन्मी एक बेटी........

पास की झाड़ी में एक शेरनी अपने बच्चे को दूध पिलाना शुरू ही करनेवाली थी कि सोना का विलाप सुनकर, उसका हृदय करुणा से भर आया। वह दबे पंजे सोना के पास आई। ममता भरे स्वर में पूछा : बेटी, तुझे क्या कष्ट है ?"

सोना की कथा सुनकर शेरनी ने गागर में अपना दूध चुआया और फिर चुपचाप झाड़ी के पीछे ओझल हो गई। उसका बच्चा भूखा रहा।

सोना ने शेरनी को मन-ही-मन धन्यवाद दिया।

शेरनी के दूध की गागर मँझली भाभी के सामने लाकर रख दी।

भाभियों की समझ में नहीं आ रहा था कि यह छोटी-सी लड़की जादूगरनी है या उसके सिर पर विधाता का हाथ है। सर्प, पशु, पक्षी, सभी उसकी सहायता कर रहे थे। फिर भी भाभियाँ हार मानने को तैयार नहीं थीं। अब तक तो वे उसे सता रही थीं, अपनी दबैल बनाना चाहती थीं। अब उससे छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगीं।

रात तेज़ आँधी आई थी। अभी तक थमी नहीं थी। भाभियों ने खिड़की से देखा, समुद्र में ऊँची पहाड़-सी लहरें उठ रही थीं। किनारे से टकरातीं तो फेन बनता। यहाँ से वहाँ तक फेन-ही-फेन था।

उन्होंने सोना को एक कपड़ा दिया। कहा, समुद्र तट जाकर उसमें फेन भर लाये। मन में सोचा, जैसे ही सोना फेन पकड़ने पानी में उतरेगी, कोई बड़ी लहर आयेगी और उसे अपने अंक में भरकर, बहा ले जायेगी।

सोना को समुद्र प्रिय था। अक्सर भाइयों के साथ नाव में सैर करने जाती थी। बड़ा आनन्द आता था। आज समुद्र का रूप डरावना था। काला और राक्षसी। उसने बड़ी भाभी से बिनती की, तूफ़ान कम हो जायेगा तब चलूँगी जाऊँगी।

भाभी चण्डी बनी हुई थी। डाँटकर बोली : "तूफ़ान कम हो जायेगा तो फेन कहाँ से आयेगा? अभी जाना होगा।"

सोना लाचार हो गई।

हिम्मत बाँधकर पानी में उतरी। जैसे ही लहरें किनारे से टकराकर वापिस होतीं, सोना के पैर उखड़ने लगते। जब उनके उतार-चढ़ाव की आदी हो गई, तब कपड़े में फेन पकड़ने की कोशिश करने लगी। फेन कपड़े में भरते और पानी हो जाते।

फेन कपड़े में न भरने थे, न भरे।

सोना पानी से निकल आई। घर लौटने का साहस नहीं था। वहीं बैठ गई, और बैठी रही। दिन ढलने लगा था। आँधी बंद हो गई थी। जल शान्त हो गया था। लहरें सो गई थीं। सोना दूर, पानी के उस पार, आँखें गड़ाये थी। देखे जा रही थी। न जाने क्या?

सहसा उसे लगा, दूर पानी से कोई चीज़ ऊपर उठ रही है। उसका आकार बड़ा होता जा रहा है। वह चल रही है। वह उसी की ओर आ रही है। उसमें ऊँची-ऊँची बल्लियाँ हैं, जिनमें कपड़े बँधे हैं। वह पालदार नौका है। जैसे ही वह निकट आई, सोना खुशी से उछल पड़ी। उसके मुँह से चीख़ निकली :

"यह तो हमारी नौका है। मेरे भाई, आ गये मेरे भाई।"

उसे खेल सूझा। वह एक चट्टान के पीछे छिप गई। जैसे ही भाइयों ने किनारे पर पैर रखे, वह गाने लगी :

घर लौट के आये मेरे बीरा,
मैं उनपे बलि-बलि जाऊँ।

भाई पहचान गये। ऐसे कूकनेवाली तो उनकी बहन ही हो सकती है। किन्तु यहाँ, इस निर्जन तट पर? इधर-उधर आँखें दौड़ाईं। कहीं नज़र नहीं आई। बड़े भैया ने पुकारा :

"सोना, सोना।"

"बताओ मैं कहाँ हूँ?" वह उनके साथ लुकाछिपी खेल रही थी।

"जहाँ भी हो, सामने आओ सोना। तुम्हें देखने को हम अधीर हो रहे हैं।"

वह खिलखिलाती हुई चट्टान के पीछे से निकली। दौड़कर भाइयों से चिमट गई। उन्होंने उसे अंक में भर लिया। फिर देखा, उसके कपड़े मैले, मुसे हुए थे। बाल रूखे, बिखरे हुए थे। चेहरा कुम्हलाया हुआ था। पूछा : "यह क्या हाल बना रखा है सोना ?" उसका जी भर आया। जब से भाई

गये थे, उसने प्यार के बोल नहीं सुने थे। वह फूट पड़ी। भाइयों ने कभी सोना को रोते नहीं देखा था। उन्हें चिन्ता हुई।

"क्या हुआ सोना, बोलो तो।"

वह चुप रही। आँखें झर रही थीं।

बड़े भैया ने दुलार से फिर पूछा : "बोलो सोना। हमसे मत छिपाओ।" उसने अपनी बीती सुना दी। भाइयों के चेहरे तमतमा गये। आँखें लाल हो गईं। बोले कुछ नहीं। वे सीधे घर नहीं गये। रात नौका में बिताई। सोना उनके पास रही।

हवेली में भाइयों के आने का समाचार पहुँच गया था। बन्दनवार लगाये गये। तिलक के लिये चंदन घिसा गया। आरती उतारने के लिये चाँदी के थालों में घी के दीप जलाये गये। पथ पर गुलाब की पंखुड़ियाँ बिखेरी गईं। पत्नियाँ प्रवेश द्वार पर खड़ी हो गईं।

अगले सवेरे भाई आये। मझले भैया ने मोटा लबादा पहना हुआ था। उसमें कुछ छिपा हुआ था। स्वागत रीति पूरी हुई। भाई गुमसुम रहे। किसी के अभिवादन का उत्तर नहीं दिया। बैठक में अपना स्थान ग्रहण किया। भोजन परसा गया। सबने थाल एक ओर सरका दिये। बड़ी भाभी ने मनुहार की। बड़े भैया ने पूछा :

"सोना कहाँ है ?"

बड़ी भाभी चुप रहीं। बड़े भैया ने फिर पूछा : "सोना नहीं दीखी। वह कहाँ है ?" उनका स्वर भाभियों को दहला गया।

कल सवेरे से, जब सोना को उस आँधी तूफ़ान में समुद्र से फेन लाने भेजा गया था, किसी ने उसे नहीं देखा था। भाभियों ने तो चाहा था कि वह समुद्र में समा जाये। वे यह भी जानती थीं कि सोना भाइयों की आँखों का तारा है। एक-दूसरे को देखने लगीं। वे क्या उत्तर देतीं ? बड़े भैया की कठोर दृष्टि बड़ी भाभी पर टिकी हुई थी।

उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

नौकरों को बुलाया गया। सात पालकी लाने को कहा गया। पत्नियों को आदेश हुआ, बिना अपने साथ कुछ लिये, जैसी खड़ी हैं वैसी ही, पालकी में बैठकर अपने-अपने मायके चली जायें और वहीं रहें। हवेली के द्वार उनके लिये सदा को बंद हो गये।

"भैया, इतना कठोर दण्ड नहीं। नहीं, नहीं।"

मझले भैया के लबादे में सोना छिपी थी। वहीं से उसकी आवाज़ आई। वह बाहर निकली। उसे जीवित देखकर भाभियाँ चकित रह गईं। सोना ने बड़े भैया के पैर पकड़ लिये।

"भैया, आप बापू की सीख भूल गये? वह सदा कहते थे, 'क्षमा बड़न को चाहिये।' जो बीत गया, उसे बिसरा देना चाहिये। बड़ी भाभी और अन्य सब भाभियों की ओर से मैं आपसे क्षमादान माँगती हूँ। वे इसी हवेली में रहेंगी और आपका स्नेह पायेंगी।"

भाभियों को अपने कानों पर विश्वास करना कठिन हो रहा था। बड़ी भाभी आगे बढ़ी। सोना की बलैयाँ लीं। बोलीं : "सोनाबैन, तुम वास्तव में सोना हो। हम सब पापिन हैं। तुमने हमारा उद्धार कर दिया।"

हवेली फिर हँसी-खुशी से भर गई।

2

उसका भाग्य जागा

दो भाई थे। दोनों के घर की ज़मीन सटी हुई थी। एक पर आलीशान कोठी बनी थी, दूसरे पर घास-फूस की झोंपड़ी। बड़े भाई के घर धन बरसता था, छोटे के घर कंगाली का राज था। बड़े भाई की बेटी का ब्याह था। जीमन पर सारे गाँव को न्यौता था। छोटे भाई को नहीं। दोनों में अनबन थी। बड़ा भाई छोटे भाई के परिवार का साया भी अपने घर में पड़ते नहीं देख सकता था।

छोटे भाई का काम छूट गया था। दो दिन से घर में चूल्हा नहीं जला था। भूख सता रही थी। बच्चे ललचाई आँखों से कोठी की ओर देख रहे थे। वहाँ शहनाई बज रही थी। आने-जानेवालों का ताँता लगा हुआ था। पकवान की सुगंध आ रही थी।

बच्चों को देखकर भाई पसीज गया। पत्नी से बोला : "पिछवाड़े से कोठी जाकर कुछ बचन-खुचन मिले तो ले आ। बच्चों के पेट में कुछ डाल दे।"

मन-मारकर पत्नी गई। कोठी में बरतन मँज-धुल चुके थे। जूठन से कूड़ेदान अटे पड़े थे। एक गंगाल में सफ़ेद पानी पड़ा था। छूकर देखा। चावल का मांड था। सोचा, यही बच्चों को पिला देगी। अपने साथ एक बरतन लाई थी। नौकरों से बिनती की, उसके बरतन में मांड भर दें। तभी जिठानी आ गई। उसे देखकर चिल्लाई :

"इस कलमुँही का पैर इस घर में कैसे पड़ा ? निकालो इसे।"

नौकरों ने, धक्के देकर, छोटी को घर से बाहर खदेड़ दिया।

इस अपमान से छोटा भाई आगबबूला हो गया। उसने एक हाथ मे लाठी और दूसरे में दराँती उठाई और घर से जाने लगा। पत्नी ने रोका। छोटे ने उसे एक ओर धकेल दिया।

"मैं बड़े भाई के खेत जा रहा हूँ। जौ की फ़सल तैयार खड़ी है। दो-चार गट्ठर काट लाता हूँ।"

वह घर से निकला और तेज़ डग भरता हुआ खेत पहुँचा। जैसे ही उसने जौ की पहली बाल काटने को दराँती उठाई, पीछे से आवाज़ आई : "रुक जाओ। मैं तुम्हें यह नहीं करने दूँगा।"

"तुम कौन हो रोकनेवाले ? मेरे बच्चे भूखे हैं, मैं जौ काटूँगा।"

"मैं तुम्हारे बड़े भाई का भाग्य हूँ।"

"मेरे बड़े भाई का भाग्य ?"

"हाँ। उसके माल की रक्षा करना मेरा धर्म है।"

"तुम सामने आओ।"

एक अधेड़ उसके सामने आकर खड़ा हो गया। वह लगता तो चौकीदार था लेकिन उसके चेहरे पर बड़ा तेज था। उसकी आँखें छोटे भाई को भीतर तक भेद गईं।

"आप मेरे बड़े भाई के भाग्य हैं तो मेरा भाग्य कहाँ है ?"

"वह सो रहा है।"

"कहाँ ?"

"पूरब की दिशा में, सात समुद्र पार।"

"उसे जगाया जा सकता है ?"

"क्यों नहीं !"

"कैसे ?"

"यह तुम्हारा काम है। तुम्हें स्वयं जाकर उसे जगाना होगा।"

"वहाँ मैं कैसे पहुँच सकता हूँ ?"

"मैंने बता दिया, पूरब दिशा में सात समुद्र पार। पता-ठिकाना तुम्हें स्वयं खोजना होगा।"

"मैं जाऊँगा उसे जगाने, अवश्य जाऊँगा, लेकिन मेरे बच्चे भूखे हैं, क्या मैं जौ की कुछ बालें नहीं काट सकता ?"

"नहीं। तुम्हारे भाई के हर माल की रक्षा करना मेरा धर्म है।"

"तुम बड़े निर्दयी हो।"

"धर्म के पालन में दया आड़े नहीं आती।"

घर आकर छोटे भाई ने पत्नी को यह घटना सुनाई। वह अपने सोये भाग्य को जगाने अधीर हो रहा था। घर में और नहीं टिक सकता था।

पत्नी पास-पड़ोस के दरवाज़े खटखटाकर थोड़ा सत्तू माँग लाई। एक-एक मुट्ठी सबने पेट में डाला। जो बचा वह पति के झोले में रख दिया। अगले दिन सवेरे वह घर से निकल गया। बड़ा बेटा चौदह-पन्द्रह साल का था। उसने साथ चलना चाहा। बाप ने मना कर दिया।

छोटे भाई का नाम रमेश था।

वह चलता रहा, चलता रहा। जब सूरज सिर पर आ गया तो फलों से लदे एक आम के पेड़ के नीचे सुस्ताने के लिये रुका। सत्तू की दो फंकी मुँह में डाली और पानी पीकर लेट गया। तभी एक आम ऊपर से टपका। बड़ा, पीला, पका हुआ, रसदार। उसने लपक कर उठाया और मुँह मारा। वह कसैला निकला।

"धत्त तेरे की," उसने मुँह बिचकाते हुए कहा और आम फेंक दिया। "मेरा भी कैसा भाग्य है, मेरा हाथ लगते ही आम भी कसैला हो गया !"

उसने सुना, किसी ने गहरी, ठण्डी साँस ली। इधर-उधर देखा। कोई नहीं था। तभी एक दर्दभरी आवाज़ आई :

"मैं बूढ़ा आम का पेड़ हूँ। हर साल ऋतु आती हैं, मुझ में बौर आता है, फल लगते हैं, लेकिन सब कसैले। जो खाता है, मुझे कोसता है।"

"ऐसा क्यों है ?" रमेश ने पूछा।

"क्या बताऊँ, मेरा भाग्य ही खोटा है, लेकिन तुम कौन हो पथिक ? बड़े थके-हारे लगते हो।"

"पेड़ बाबा, मेरा भाग्य भी आप जैसा ही है। वह कहीं सो रहा है। मैं उसीकी खोज में हूँ। उसे जगाने जा रहा हूँ।"

"अरे पथिक, मुझ पर भी इतनी कृपा करना। तुम्हें अपना भाग्य मिल जाये तो उससे यह भी पूछ लेना कि मेरे फल कसैले क्यों होते हैं ?"

"अवश्य बाबा।"

घड़ी दो घड़ी सुस्ताकर वह आगे बढ़ा। कुछ मील चल कर एक नदी के किनारे पहुँचा। वहाँ एक अजब दृश्य देखा। एक मोटी मछली, जिसका पेट फूला हुआ था, बालू रेत पर तड़प रही थी। वह पानी के पास जाती पर उसमें प्रवेश नहीं करती। वहाँ से लौट आती और अधिक बेचैनी से तड़पती। रमेश को देखते ही मछली की उदास आँखें उस पर जम गईं। वह बोली :

"पथिक, तुम जो भी हो, क्या यह पता लगा सकते हो कि यह मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि मुझे अपने घर, नदी के जल से, निकलकर इस तपती रेत पर क्यों तड़पना पड़ रहा है। यहाँ तो मेरे प्राण निकल जायेंगे।"

रमेश का हृदय करुणा से भर आया। उसने मछली को वचन दिया कि उसके कष्ट के कारण और निवारण का पता लगायेगा।

वह चल रहा था। नहीं जानता था कि कब तक चलना है। कहाँ सात समुद्र होंगे। कैसे उन्हें पार करेगा। कहाँ उसका सोया हुआ भाग्य मिलेगा। अंटी में पैसा-टका नहीं था। किसी तरह पेट भी भरना था। राह में जहाँ मजूरी मिलती, दो-चार दिन टिक जाता। पेट में अन्न और अंटी में पैसे पड़ जाते तो आगे बढ़ जाता। वह भूल गया था कि उसे घर छोड़े कितने दिन हो गये थे।

वह एक नगर पहुँचा। वहाँ का राजा अपना नया महल बनवा रहा था। उसका एक बुर्ज पूरा नहीं हो रहा था। जैसे ही पूरा होने को आता, वह गिर जाता। कई बार ऐसा हो चुका था। उस दिन सवेरे भी। राजा दुखी था। उसके पास महल का शिल्पी खड़ा था, चारों ओर दरबारी। सब गुमसुम। रमेश भी एक कोने में खड़ा हो गया। उस पर राजा की निगाह पड़ी। भाँप लिया कोई परदेसी है। उसे अपने पास बुलाया। रमेश डर गया। अनजाने कोई अपराध हो गया होगा तो दण्ड देगा। वह राजा के पैरों पड़कर गिड़गिड़ाने लगा :

"महाराज क्षमा। मैंने कोई अपराध नहीं किया है। परदेसी हूँ। बुर्ज का गिरना सुनकर मैं भी देखने आ गया।"

"नहीं, नहीं। तुमसे कोई अपराध नहीं हुआ है। तुम परदेसी लगे। हमने सोचा, पूछें, कहाँ से आये हो, कहाँ जा रहे हो ?"

रमेश ने अपनी कथा सुनाई। महाराज को आशा की किरण दिखाई दी। बोले : "भाई, तुम्हें तुम्हारा सोया हुआ भाग्य मिल जाये तो उससे यह भी पूछ लेना कि हमारे महल का बुर्ज पूरा होने के पहले क्यों गिर जाता है ?"

"अवश्य महाराज।"

महाराज ने उसे सोने की मुद्राएँ दीं। उनसे विदा लेकर जब वह आगे बढ़ा तो चाल में स्फूर्ति थी।

खेत में एक घोड़ा चर रहा था। सुन्दर, सजा-सजाया। उसकी काठी और रकाब सोने-चाँदी की थीं, झूल और बाग रेशम की। सिर पर मोरपंख का तुर्रा था और पैरों में चाँदी की घंटियाँ। उसकी अयाल सुनहरी थी। वहाँ कोई सवार था न साईस।

उसके पैरों की आहट सुनकर घोड़े ने सिर उठाया। उसकी आँखों में

गहरी उदासी थी। रमेश ठिठका। घोड़े के पास आकर दुलार से पीठ सहलाई। घोड़े की आँखों से आँसू टपकने लगे। वह बोला :

"श्रीमान आप कौन है ? कहाँ से आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? क्या आप भी मेरी तरह कोई दुखिया हैं जो इस बियाबान में भटक रहे हैं ?"

रमेश से उसकी यात्रा का कारण सुन कर घोड़े ने बिनती की :

"श्रीमान, आपको अपना भाग्य मिल जाये तो उससे मेरे लिये भी पूछ लेना कि मैं कब तक यूँ उपेक्षित रहूँगा। मेरे मन में भी चाहत है कि कोई मेरी सवारी करे। अपनी रानों में दबा कर एड़ लगाये। सरपट दौड़ाये। जहाँ चाहे ले जाये, नदी-नाले हों, जंगल-पहाड़ हों, लड़ाई का मैदान ही क्यों न हो। मैं अपने सवार के लिये तरस रहा हूँ।"

"अवश्य मैं अपने भाग्य से पूछूँगा, मैं वचन देता हूँ।"

उसने एक बार फिर घोड़े की पीठ सहलाई। घोड़े की आँखें एक बार फिर रुआँसी हो गईं।

घर से निकलने कि बाद कई मौसम बदल चुके थे। यात्रा अनन्त बनती जा रही थी। अभी तो पहले ही समुद्र का छोर नहीं पकड़ा था, सात समुद्र कब और कैसे पार होंगे ? उसे संदेह होने लगा था कि वह कभी अपने लक्ष्य तक पहुँच पायेगा। सोचता था, कहीं जिसने अपने को बड़े भाई का चौकीदार कहा था, उसने बेवकूफ़ तो नहीं बनाया है। बीवी-बच्चों की चिन्ता सताने लगी थी। वह निश्चित नहीं कर पा रहा था कि क्या करे। चलता रहे या लौट जाये।

इस उलझन में डूबते-उबरते वह एक पेड़ की छाँव में बैठ गया। ठण्डक से उसकी आँखों में नींद घिर आई।

सहसा, एक तीखी आर्त पुकार से उसकी नींद टूट गई। वह पेड़ के ऊपरी भाग से आ रही थी। वहाँ एक घोंसला था। एक साँप उसकी ओर बढ़ रहा था। बिल्कुल पास पहुँच गया था। घोंसले की किगर पर चढ़ कर दो चैंचले रक्षा के लिये पुकार कर रहे थे। वे पंख फड़फड़ा रहे थे। उड़ नहीं सकते थे।

रमेश ने लाठी उठाई, लपक कर पेड़ पर चढ़ा और एक ही वार में साँप को ढेर कर दिया। पेड़ से उतर कर उसने साँप को मिट्टी से दबा दिया और फिर सो गया। चैंचले भी शान्त हो गये।

वे चैंचले गरुड़ जाति के थे।

जब उनके माँ-बाप लौटे तो एक अजनबी को पेड़ के नीचे सोता पाया।

115474

इससे पहले कोई उनके कई बच्चे नष्ट कर चुका था। उन्हें विश्वास हो गया कि यही वह व्यक्ति होगा। उन्होने योजना बनाई कि दोनों उस पर एक साथ झपटेंगे और उसकी बोटियाँ नोच डालेंगे।

यह संवाद बच्चों ने सुन लिया। उन्होंने माँ-बाप को बताया कि कैसे अजनबी ने उनकी साँप से रक्षा की थी। गरुड़ जोड़ी ने अपने को धिक्कारा। बिना जाने-बूझे, बिना सोचे-समझे, उतावली में कुछ कर गुज़रते तो कैसा अनर्थ हो जाता। बच्चों से यह कहकर कि अभी आते हैं, वे फिर उड़ गये। जब लौटे तो उनके साथ तरह-तरह की मिठाइयाँ, फल आदि थे। उन्हें सोते हुए रमेश के पास रख दिया और वहीं बैठ गये, उसके जागने की प्रतीक्षा में। अपने बड़े-बड़े पंखों से वे उसे हवा भी करते जाते थे।

आँख खुलने पर गरुड़ जोड़े ने बच्चों की प्राण रक्षा के लिये रमेश को धन्यवाद दिया। भोजन देख कर उसकी बाँछें खिल गईं। पहला कौर मुँह में डालने लगा था कि बीवी-बच्चों की याद आ गई। वे कैसे कष्ट में होंगे ? कैसे पेट भरते होंगे ? उसका हाथ थम गया। आँखें डबडबा आईं। गाल पर आँसू ढरक आये। नर गरुड़ ने दुख का कारण पूछा। सुनकर उसे आश्वस्त किया :

"आप चिन्ता न करें। मैं आपको सात समुद्र पार अपने सोये हुए भाग्य तक पहुँचा दूँगा।"

"आप ! कैसे ?"

"हाँ, मैं। आप मेरी पीठ पर बैठ जायें। सात समुद्र क्या, मैं आपको सारी धरती की परिक्रमा करा सकता हूँ।"

"अच्छा !"

"और जब तक आपका काम पूरा नहीं होगा, मैं वहीं रुका रहूँगा। नहीं तो आप लौटेंगे कैसे?"

रमेश की खुशी का ठिकाना नहीं था। वह गरुड़ की पीठ पर बैठ गया। गरुड़ ने पंख फड़फड़ाये और उड़ चला। अब नदी की बाधा थी न पहाड़ की, जंगल की न रेगिस्तान की। वह ऊपर से दृश्य देखता जा रहा था। दूर से सब कितने सुंदर लगते थे। फिर एक के बाद एक करके सात समुद्र निकलते गये। सातवाँ समुद्र पार करने पर उसने देखा कि एक सुनसान तट पर, सिर तक चादर ताने, कोई लेटा है। वह हिल-डुल नहीं रहा है। उसने सोचा यही उसका भाग्य होगा। उसने गरुड़ को उस सोती हुई काया के पास उतरने को कहा। उतरते ही, चादर खींचकर, रमेश ने काया को लाठी से कोंचा :

"उठ मेरे बैरी, उठ !"

आँख मलते हुए वह व्यक्ति हड़बड़ा कर उठा : "मैं किसका बैरी हूँ ?"

"मेरा। तू मेरा भाग्य यहाँ सात समुद्र पार चादर तानकर सो रहा है। तुझे मेरी कोई सुध नहीं है, कि मैं जीवन में कितना कष्ट भोग रहा हूँ। अब मैं तुझे और सोने नहीं दूँगा।"

"अब मैं कभी नहीं सोऊँगा," भाग्य बोला। "तुमने कभी अपने भाग्य की चिन्ता ही नहीं की। मैं कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। तुम आओ और मुझे जगाओ। तुम बेबस बने हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे। तुम्हारे भाई ने तुम्हारा अपमान न किया होता तो अब भी वैसे ही रहते। निश्चिन्त रहो। अब मैं जाग गया हूँ तो जागा ही रहूँगा।"

"मैं समझ गया। जो करता है वही पाता है। मेरे भाई के भाग्य ने मेरा बड़ा उपकार किया है। अब मेरे कुछ प्रश्न हैं, उनके उत्तर दोगे ?"

"बोलो।"

आम के पेड़, मछली, राजा और घोड़े ने जो जो पूछा था, रमेश ने सुना दिया।

भाग्य कहने लगा : "तो सुनो। मैं हरेक का रहस्य तुम्हें समझाता हूँ। इस से तुम्हें लाभ होगा।

"आम के पेड़ के नीचे धन गड़ा हुआ है। उसके फल तब तक मीठे नहीं होंगे जब तक वह धन से छुटकारा नहीं पायेगा। वह धन तुम खोद निकाल कर अपने पास रख सकते हो।

"तूफ़ान से नदी में एक नौका डूब गई थी। उस पर सवार एक व्यापारी के पास सोने की ईंट थी। मछली ने उसे निगल लिया था। ईंट इतनी भारी है कि मछली तैर नहीं सकती। उसे डर है कि वह नदी की तह में बैठ जायेगी और वहीं दम तोड़ देगी। उसके पेट से ईंट निकाल कर तुम मछली का कष्ट दूर कर सकते हो। ईंट तुम्हारी होगी।

"राजा को केवल महल पर महल बनवाने की धुन है। उसे परिवार की चिन्ता है न प्रजा की। सबसे दुखी उसकी बेटी है जो विवाह योग्य हो गई है। बेटी और प्रजा के दुखी दिलों से जो आहें निकलती हैं, उनसे बनता हुआ बुर्ज ढह जाता है। राजा से कहना, वह परिवार और प्रजा की चिन्ता करे। जैसे ही वे सुखी होंगे, आहें बंद होंगी तो बुर्ज पूरा हो जायेगा। वह तुम्हें पुरस्कार दे तो अपने बेटे के लिये उसकी बेटी का हाथ माँग लेना।"

"और वह सजा-सजाया घोड़ा, जो सवार की प्रतीक्षा कर रहा है ?"

"तुम ही उस घोड़े के सवार हो। जाओ, उसकी सवारी करो। वह तुम्हें राजा, मछली और पेड़ के पास होते हुए अपने घर पहुँचा देगा।"

एक बार फिर अपने भाग्य से आश्वासन पाकर कि वह अब कभी नहीं सोयेगा, रमेश ने विदा ली। गरुड़ ने फिर सात समुद्र पार कर उसे उस मैदान में उतार दिया जहाँ घोड़ा घास चर रहा था। गरुड़ ने रमेश से विदा ली।

रमेश लपककर घोड़े की पीठ पर चढ़ गया और एड़ लगाते हुए कहा : "आ गया तेरा सवार ! अब सरपट दौड़ चल राजा की नगरी।"

हिनहिनाकर घोड़े ने छलाँग लगाई। उसके पैरों में बिजली भर गई थी।

भाग्य का उत्तर पाकर राजा को अपनी करनी पर बड़ा पछतावा हुआ। उसने मंत्रियों को आदेश दिया कि प्रजा के कष्ट दूर किये जायें। परिवार के सुख का दायित्व उसने स्वयं लिया। प्रजा, परिवार की आहें बंद हो गईं। बुर्ज पूरा हो गया। राजा ने रमेश को जी खोलकर धन दिया। कई दिन अपने पास रखा। उसके बेटे से अपनी बेटी का विवाह स्वीकार कर लिया। जब वह चलने लगा तो सेवकों का एक दल उसके साथ कर दिया।

महल से निकलकर रमेश ने दो सेवकों को सोने के सिक्कों से भरी एक थैली दी। पत्नी को संदेश भेजा कि अपने और बच्चों के लिये बढ़िया वस्त्र और भोजन की सामग्री ख़रीदे। वह जल्द ही गाँव पहुँचनेवाला है।

बालू रेत पर मछली पहले जैसे तड़प रही थी। रमेश ने पेट दबाकर सोने की ईंट निकाली। उसे अपने पास रखा। मछली ने अपने को हल्का अनुभव किया। वह कूदकर पानी में चली गई। मस्ती से तैरने लगी।

आम के पेड़ के पास पहुँचकर सेवक तने के चारों ओर खुदाई में जुट गये। धरती में गड़े, ताँबे के दो घड़े मिले। रमेश ने उनके ढक्कन खोले। वे हीरे-जवाहरात और ज़ेवर से ऊपर तक भरे थे। घड़ों के निकलते ही पेड़ ने राहत की साँस ली। उसके साथ कुछ आम झरे। रमेश ने एक उठाकर चखा। वह मीठा था।

जब रमेश और सेवकों का काफ़िला गाँव पहुँचा तो वहाँ हलचल मची हुई थी। गाँववाले, जिनमें उसका बड़ा भाई और परिवार भी था, हैरान थे कि किस राजा की सवारी आई है, और क्यों? जब किसी ने रमेश को पहचान कर कहा : "अरे, यह तो अपना रमेश है," तो सबने दाँतों तले उँगली दबा ली।

भाई को पता चल गया कि रमेश उससे भी अधिक धनवान हो गया है।

उससे मेल करना चाहा। उसके सम्मान में ज्यौनार की। सब गाँववालों को न्यौता दिया। जब रमेश की पत्नी खाने बैठी तो उसने अपने ज़ेवर उतार कर सामने रख दिये। खाने का कौर अपने पेट में डालने की बजाय, यह गुनगुनाते हुए, वह एक-एक ज़ेवर पर रखती जाती :

जीमो रे मेरे छन्न पछेली
जीमो रे मेरे नौलख हार,
जीमो रे मेरे कंगन पौचे
जीमो री मेरी मोतियन माल।

उसके इस व्यवहार पर सभी हैरान थे। पास बैठी एक बुढ़िया ने कारण पूछा।

रमेश की पत्नी बोली : "कभी मैं ग़रीब थी। मेरे बच्चे भूखे थे। उनका पेट भरने में बड़े भाई, मेरे जेठजी की कोठी से बचा-खुचा माँगने आई थी। चावल का मांड लेने पर मुझे धक्के मारकर कोठी से बाहर निकाल दिया गया था। आज मेरे पास धन-दौलत है, ज़ेवर हैं। एक राजा मेरा समधी बनने जा रहा है। यह सब इन्हीं का प्रताप है कि मुझे और मेरे पति को इतने आदर से बुलाया गया है। मैं अपना पेट भरने की बजाय, कृतज्ञता से इन ज़ेवरों का पेट भर रही हूँ। मैं क्या ग़लत कर रही हूँ ?"

चारों तरफ़ ठहाके गूँज उठे। जिठानी पानी-पानी हो गई। उसने अपनी करनी पर क्षमा माँगी।

दोनों परिवार स्नेह-सूत्र में बँध गये।

एक दिन रमेश ने बड़े भाई के खेत जाकर उसके भाग्य को धन्यवाद दिया। उसी की कृपा से रमेश के दिन फिरे थे। वह अपने सोये हुए भाग्य को जगा पाया था।

3

रबाड़ी से राजा

काठियावाड़ का वह रबाड़ी, गाँव से दूर, घास-फूस की एक झोंपड़ी में रहता था। अकेला था। परिवार में कोई और नहीं था। खेत मजूरी करता था। दो चार आने मिल जाते थे। रूखी-सूखी का जुगाड़ हो जाता था।

वह झोंपड़ी के बाहर बैठा था। आज काम नहीं मिला था। निवाड़ की पट्टी बुन रहा था। कभी कुछ गुनगुनाता जाता था। उसका गला बड़ा मीठा था। देखने में भी सुन्दर, सलोना। कद काठी पर भी आँखें जमती थीं।

"राम-राम भाई !"

रबाड़ी ने आँख उठाई। दो अजनबी सामने खड़े थे। कपड़ों और बोली से परदेसी लगते थे। एक के हाथ में लोहे की पेटी थी, दूसरे के कपड़े की पोटली।

"राम राम।"

"आज सवेरे घर कैसे? खेत पर नहीं गये ?"

"आप कौन हैं ? क्या चाहते हैं ?"

"दूर से आ रहे हैं। एक दो दिन आपकी झोपड़ी में ठिकाना मिल सकता है क्या ?"

"लेकिन मेरे पास आपके लिये खाना-पानी है न बोरिया-बिस्तर।"

"उसकी आप चिन्ता न करें। हम जैसे-तैसे कर लेंगें। बस, पैर फैलाने को जगह चाहिये।"

रबाड़ी ने अजनबियों को झोपड़ी में टिका लिया। थोड़ी दूर नदी बहती थी। उसमें नहा-धोकर वे पास की बस्ती में गये। एक छबड़ी में भोजन मिष्ठान्न लाये, और ओढ़ने-बिछाने के लिये चद्दरें। एक जोड़ी रबाड़ी के लिये भी। सबने छककर भोजन किया और लम्बी तानकर सो गये।

अजनबी ठग थे। उनके पास चोरी का माल था। छिपकर कुछ दिन यहाँ बिताना चाहते थे। फिर धंधा करने कहीं और जाना था।

रबाड़ी प्रसन्न था। घर बैठे भरपेट बढ़िया भोजन मिल रहा था। ठगों ने उसे नये कपड़े लाकर दिये थे। उन्हें पहनकर वह और भी जचँता था। ठगों ने उसे भी अपने साथ गाँठने का मनसूबा बनाया। उससे बात चलाई। उनकी ठगी के भेद से वह अनजान था। उनके साथ हो लिया।

ठगों ने सुन रखा था कि उस राज का राजा बड़ा धनी था। उसके एक कन्या थी, चाँद-सी सुन्दर और कमल-सी कोमल। उसका विवाह नहीं हुआ था।

एक दिन तीनों राजधानी की ओर चल पड़े। नगर के निकट एक धर्मशाला में ठहरे। नगर में घूम फिरकर उसकी टोह ली। एक सवेरे, जल्दी उठ-कर, दोनों ठग नगर से एक पालकी, उसे उठानेवाले कहार, कुछ घुड़सवार और बाजेवाले अपने साथ लाये। सब भाड़े के। रबाड़ी को रेशमी वस्त्र पहनाये, सिर पर कलाबत्तू की पगड़ी और पैरों में कामदार जूती। रबाड़ी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। ठग उसे बोलने नहीं दे रहे थे।

उसे पालकी में बैठाया। एक ठग ने आदेश दिया कि बिना उससे संकेत पाये वह अपना मुँह नहीं खोलेगा। पालकी के आगे बाजेवाले थे, पीछे घुड़सवार। अगल-बग़ल दोनों ठग। जलूस धर्मशाला से नगर के लिये रवाना हुआ। जैसे ही चारदीवारी में प्रवेश किया ठग पालकी की बारह-फेरी करके सिक्के लुटाने लगे। भिखमंगों की भीड़ उनके पीछे हो गई। सब जय-जयकार करने लगे। नगरवासी विस्मित थे, किसकी सवारी आई है। जो अधिक उत्सुक थे, वे साथ हो लिये।

जलूस महल के फाटक पर पहुँचा। ठगों ने दरबानों को कपाट खोलने का हुक्म दिया। दरबान हिचकिचाये। उन्हें किसी के आने की सूचना नहीं थी। ठग क्रोध का दिखावा करते हुए ऊँचे स्वर में बोले :

"तुम जानते हो किन महाराज के राजकुमार की सवारी रोक रहे हो ?"

"हमारे महाराज तुम्हारे राजा से कहीं बड़े हैं।"

"तुम्हारा राजा हमारे महाराज को लगान देता है।"

"तुम्हें इस अपमान का दण्ड भोगना होगा।"

"तुमने राजकुमार की सवारी रोकी है।"

"तुम्हें दण्ड मिलेगा, भारी दण्ड।"

ठग एक साँस में यह सब बोल गये। दरबान घबरा गये। उन्होंने कपाट

खोल दिये। जुलूस ने महल में प्रवेश किया। बाजों की लय और गति और तेज़ हो गई। जय-जयकार से आकाश गूँजने लगा।

एक दरबान दौड़कर महाराज के पास पहुँचा। समाचार दिया। राजा हैरान था, बिना बुलाये, बिना ख़बर के, यह कौन आ गया है। लेकिन जब आ ही गया है तो उसे आदर से ठहराना होगा। उन्होंने मंत्री को आदेश दिया कि महल की अतिथिशाला में उचित प्रबन्ध किया जाये। साथ ही, यह भी पता लगाया जाये कि वह कौन है जो हमसे भी बड़े महाराज का राजकुमार होने का दम भरता है।

रबाड़ी के लिये सुंदर, सजा कक्ष था। उसके दायें-बायें कक्ष में ठग थे। एक मंत्री बना हुआ था, दूसरा सेनापति। घोड़ों के लिये शाही घुड़साल में जगह दी गई। पास में उनके सवारों के लिये।

मंत्री ने राजकुमार से मिलने की इच्छा प्रकट की। ठग-मंत्री ने अस्वीकार कर दी। "इतनी लम्बी यात्रा के बाद कुँअर साहब थक गये हैं। विश्राम करना चाहते हैं। आप फिर आयें।"

मंत्री ने बहुत झिझकते हुए पूछाः "आप इतना बताने की कृपा करें कि हमारे अतिथि किन महाराज के पुत्र-रतन हैं ? मेरे राजा जानना चाहते हैं।"

"अरे, आप इतना भी नहीं जानते कि उनके पिता कितने महान हैं? उनका कितना बड़ा राज्य है। समुद्र तक फैला हुआ है। राजकुमार कुछ समय से अस्वस्थ हैं। स्वास्थ्य सुधार के लिये राजवैद ने उन्हें यात्रा करने को कहा है। यह आपका सौभाग्य है कि पहले वह आपके यहाँ आये हैं। कुछ दिन ठहर कर आपके पड़ोसी राज जायेंगे। वह हमारे महाराज के अधीन हैं। हमें लगान देते हैं। नहीं, अभी आप राजकुमार से नहीं मिल सकते। आप जाइये।"

मंत्री को भेद नहीं मिला। निराश, राजा के पास आया। कथा सुनकर राजा ने कहा : "मंत्रीजी, हमसे चूक हो गई।"

"कैसी चूक श्रीमान ?"

"जब वह इतने बड़े महाराज का राजकुमार है तो हमें, आपके साथ, कुछ उपहार भेजने चाहिये थे।"

"अब ?"

"आप ख़जाने से एक हज़ार अशर्फ़ियाँ निकलवाइये। सोने के थालों में सजाकर, क़ीमती कलाबत्तू के कपड़े से ढककर, हमारी ओर से उन्हें भेंट कर आइये।"

इतनी अशर्फ़ियाँ देख कर ठगों की आँखों में चमक आ गई। लेकिन वे बड़े धूर्त थे। ताड़ गये। ज़रा-सी घुड़की में इतना माल मिल सकता है तो क्यों न और निचोड़ा जाये। इस बार ठग-सेनापति ने कड़ककर कहा :

"हमने आपसे कह दिया न कि राजकुमार अस्वस्थ हैं। थके हुए हैं। विश्राम कर रहे हैं। उन्हें कोई उपहार नहीं चाहिये। उनके अपने ख़ज़ाने में हीरा मोती, सोना, चाँदी, किसी की कमी नहीं है।"

मंत्री ने विनती की कि उन्हें राजकुमार के दर्शन भर करने का अवसर दिया जाये। राजा ने उनकी कुशल पूछने का आदेश दिया है। राजकुमार ने हमारी भेंट अस्वीकार कर दी तो उसे हम वापिस ले जायेंगे।

ठग हाथ में आई अशर्फ़ियाँ गँवाना नहीं चाहते थे। ठग-मंत्री मान गया।

"आपका इतना आग्रह है तो मैं राजकुमार से पूछ लेता हूँ।"

उसने भीतर जाकर रबाड़ी को पट्टी पढ़ाई। मंत्री भीतर आकर कुछ पूछें तो उत्तर मत देना। चुप रहना। वह भेंट स्वीकार करने को बार-बार अनुरोध करें तो त्यौरी चढ़ा कर बस इतना कहना : "अच्छा, रख दीजिये और जाइये। हम सोना चाहते हैं।"

ऐसा ही हुआ। मंत्री को अब भी कोई भेद नहीं मिला। मुँह लटकाये लौट आया। उसके साथ जो घटा, राजा को सुना दिया।

राजा को विश्वास हो गया कि हो न हो; उसका मेहमान किसी बहुत बड़े घराने से है। उसकी अपनी बेटी अविवाहित थी। उसे चिन्ता थी कि बेटी के हाथ पीले होने में बहुत देर हो गयी है। उसने रानी से सलाह की। मंत्री को एक बार फिर उपहार लेकर भेजा गया। मात्रा में पहले से दुगने, क़ीमत में और अधिक। उसे यह भी कहा गया कि पता लगाये कि राजकुमार क्या अभी कुँआरा है।

मंत्री के साथ पुराना नाटक फिर हुआ। पहले राजकुमार मौन रहा। उपहार रख लिये और मंत्री को अपने सामने से चले जाने को कहा। राजकुमार के कक्ष से निकले तो मंत्री ठग-मंत्री से हिचकिचाते हुए बोला : "एक बात पूछूँ ?"

"कहिये।"

"आप बुरा तो नहीं मानेंगे ?"

"पहले आप कुछ बोलिए भी।"

"क्या आपके राजकुमार अभी कुँआरे हैं ?"

"आपका मतलब?"

"ऐसा है कि हमारे राजा की....."

"रुक क्यों गये? बात पूरी कहिये।"

"हमारे राजा की कन्या अविवाहित हैं। वह चाहते हैं, राजकुमार से उनका लगन हो जाये।"

"ओह !" ठग मन-ही-मन हँसा। मछली जाल में फँस रही थी। "देखिये, मैं तो कुछ नहीं कह सकता। राजकुमार से पूछूँगा। उनकी क्या इच्छा है। वैसे, आपके राजा हमारे महाराज के पासंग भी नहीं हैं।"

"आप अभी राजकुमार से बात कर सकें तो कृपा होगी। जैसा निर्देश होगा, राजा साहब से कह दूँगा।"

"अच्छा, रुके रहिये।"

"मै यहाँ प्रतीक्षा करूँगा, उत्सुकता से।"

वह ठग अन्दर गया। दूसरे ठग से कानाफूसी की। रबाड़ी के कान में उसकी भनक पड़ी। उसने बहुत नू-नच करी। ठगों की करतूत से उसे डर लगने लगा था। उन्होंने उसे धमकाकर चुप करा दिया।

ठग खिलखिलाता हुआ बाहर आया। मंत्री को बधाई दी। राजकुमार मान गये हैं। अपने राजा को टीका लेकर भेजिये। पंडित से विवाह की तिथि निश्चित कराइये। चट मँगनी पट ब्याह। राजकुमार कुछ दिन यहाँ रुककर, अपने पूज्य माता-पिता का आशीर्वाद लेने, पत्नी के साथ अपने देश लौटेंगे।

राजा ने बने हुए राजकुमार का टीका किया। शहनाइयाँ बजीं। ढोल-नगाड़े गूँजे। नाच-रंग हुए। ग़रीब-गुरबों में धन बाँटा गया। मंगल घड़ी में विवाह हुआ। रबाड़ी ने एक बार भी मुँह नहीं खोला।

ठगों ने सोचा अपना काम पूरा हुआ। अब मालमत्ता लेकर यहाँ से रफूचक्कर होना याहिये।

वे राजा के पास गये। अर्ज़ की, राजकुमार के पिताजी को सूचना देनी है। शीघ्र जाना चाहिये। वहाँ स्वागत की तैयारियाँ करवानी होंगी। शुभ घड़ी में राजकुमार और पत्नी को अपने साथ ले जाने के लिये वे फिर आयेंगे। राजा ने अपने समधी, महाराज के लिये बहुमूल्य उपहार दिये। रबाड़ी को जो सोना-चाँदी, हीरे-मोती मिले थे सब ठगों ने अपने साथ बाँधे और रात के अँधेरे में नौ-दो-ग्यारह हो गये।

रबाड़ी अकेला पड़ गया। उसे डर था, जैसे ही उसका भेद खुलेगा,

धोखाधड़ी के लिये कठोर दण्ड मिलेगा। वह किसी से बोलता न चालता। बस, अपने में ही खोया रहता। उसे उदास देखकर राजकुमारी को चिन्ता हुई। ऐसा सुन्दर पति पाकर वह निहाल थी। मन बहलाने के अनेक उपाय किये। सब व्यर्थ रहे।

एक दिन चौसर की बिसात लगाई। चाँदी की गोटियाँ थीं। पासा फेंकने को उसे कौड़ियाँ दीं। रबाड़ी ने कभी चौसर देखी नहीं थी। कौड़ियाँ हाथ में लेकर उसने पूछा : "इनका क्या करूँ ?"

राजकुमारी ने कहा : "इन्हें फेंकिये।"

रबाड़ी उठा और कौड़ियों को खिड़की से बाहर फेंक आया।

राजकुमारी को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा : "यह आपने क्या किया ? कौड़ियाँ बाहर क्यों फेंक दीं ?"

"तुम ही ने तो कहा था, फेंको।"

"मैंने कहा था फेंको, खेलने के लिये।"

"मुझे क्या मालूम ? मैने कभी यह खेल खेला नहीं।"

"चौसर नहीं खेला है ? अच्छा, शतरंज खेलोगे ?"

"वह क्या होता है ?"

"शतरंज भी नहीं जानते, तो क्या जानते हो ?"

"खेत मजूरी करना, हल चलाना, पानी देना, निराई करना, पट्टी बुनना।"

रबाड़ी का भेद खुल गया। राजकुमारी ने सिर पीट लिया। राजा ने सुना तो आग-बबूला हो गया। रबाड़ी को धक्के मार कर महल से ही नहीं, नगर से भी निकाल दिया गया।

रबाड़ी अपनी झोंपड़ी लौट आया। खेत मजूरी, पट्टी बुनाई फिर चालू हो गई।

कई महीने बीत गये। ठगों के जीवन में आनन्द ही आनन्द था। इतना धन मिल गया था। नौकर-चाकर चारों ओर मँडराते रहते। कोई कमी नहीं थी।

उन्होनें रबाड़ी की सुध लेने का विचार किया। घर से निकले। रास्ता झोंपड़ी की ओर से ही जाता था। पास पहुँचे तो देखा, रबाड़ी अपनी पुरानी जगह बैठा निवाड़ बुन रहा था। उन्हें देखकर उबल पड़ा। लाठी उठाकर मारने को दौड़ा। ठगों ने उसे शान्त किया। वचन दिया, उसे राजा के महल में फिर अपना स्थान दिलवायेंगे। राजकुमारी ने उसे परना है। वह उसे अवश्य मिलेगी।

"कैसे?" उसे विश्वास नहीं हो रहा था।

"यह हम पर छोड़ो। हम जो कहें वह तुम्हें करना होगा।"

"मैं वहाँ, राजा की नगरी, नहीं जाऊँगा।"

"तुम्हें वहाँ नहीं जाना होगा।"

"तो फिर ?"

"सुनो। हम तुम्हें साधु के कपड़े और एक माला लाकर देंगे। तुम्हें केवल दो दिन नदी के किनारे बैठ कर माला जपनी होगी। राजकुमारी के सेवक वहीं तुम्हारी मनुहार करने आयेंगे।"

"विश्वास नहीं होता।"

"विश्वास नहीं होता तो यहीं पड़े रहो। तुम्हारा भाग्य ही फूटा है तो हम क्या कर सकते हैं?"

राजकुमारी रबाड़ी के मन में बस गई थी। वह मान गया। उसे साधु का वेश पहना कर, माथे पर तिलक कर और हाथ में माला देकर ठग नगर के लिये रवाना हो गये।

शाम का अँधेरा गहराने लगा तब नगर में प्रवेश किया। एक सराय में रैन-बसेरा किया। सवेरे उठकर, इस डर से कि नगर में कोई पहचान न ले, वेश बदला। एक पालकी का प्रबन्ध किया। बाज़ार से घी, गुड़, पीला रंग, स्त्री का बाना और चँवर ख़रीदा। सराय लौटकर, जो बड़ी उम्र का ठग था, उसके मुँह और शरीर पर घी, गुड़ पोता। मुँह पर पीला रंग और छिड़क दिया। वह कुरूप कोढ़ी बन गया। उसे पालकी में बैठाया।

छोटी उम्र के ठग ने स्त्री का बाना पहना। मिसी रचाई, माँग भरी, बिंदी लगाई और हाथ में चँवर लिया।

कहारों को आदेश दिया कि राजकुमारी के महल पहुँचकर, उनकी खिड़की के नीचे, पालकी रख दी जाये। उन्होंने वैसा ही किया। वहाँ पहुँच कर, पालकी के परदे खोल दिये गये।

जैसे ही दिन चढ़ा, घी और गुड़ के कारण अंदर लेटे, कोढ़ी बने ठग पर मक्खियाँ भिनभिनाने लगीं। स्त्री बना ठग उन्हें चँवर से उड़ाता। कोढ़ी-ठग, रह-रह कर कराहता, स्त्री-ठग भगवान की दुहाई देता : "हे प्रभु, यह कब निरोग होंगे ? मै थक गई हूँ, बिलकुल थक गई हूँ।"

राजकुमारी ने यह दृश्य देखा। कराहट और पुकार सुनी। उसके मन में दया उमड़ी। दासी को भेज कर स्त्री को अन्दर बुलाया। पूछा : "पालकी में लेटा, वह कौन है? उसे क्या कष्ट है ?"

"राजकुमारी जी, वह मेरा पति है। कभी बड़ा हृष्ट-पुष्ट सुंदर जवान था। न जाने किसका शाप लगा, उसे कोढ़ हो गया। सब इलाज करके हार गई। अब मैं उसे अड़सठ तीरथ ले जा रही हूँ। पुण्य मिलेगा। अगले जन्म में निरोगी काया मिलेगी। भगवान से यही मेरी प्रार्थना है, जब तक साँस है, उसकी सेवा करती रहूँ। अगले जन्म में वह हमें फिर पति-पत्नी बनाये।"

तीर ठीक निशाने पर बैठा। राजकुमारी को अपने पति का स्मरण आया जिसे धक्के देकर, मार-पीटकर, महल से निकाल दिया गया था। रबाड़ी था तो क्या, था तो उसका पति। और कितना सुन्दर ! उसे अपनी करनी पर बड़ा पछतावा हुआ।

वह रोती हुई राजा के पास गई। उससे बिनती की कि उसके पति की खोज कराई जाये। राजकुमारी राजा की एकमात्र सन्तान थी। उसके दुख से वह द्रवित हो गया। रबाड़ी की खोज में घुड़सवार दौड़ा दिये गये।

जब राजकुमारी अपने कक्ष में लौटी तो उस स्त्री-ठग ने सहायता माँगी। कई तीरथ बच रहे थे। धन चुक गया था। राजकुमारी उसकी पति सेवा से बहुत प्रभावित हुई थी। उसी ने राजकुमारी को अपनी भयंकर भूल का ज्ञान कराया था। गले से मोतियों का हार उतार कर दे दिया। भरपूर धन भी। स्त्री-ठग ने आसीस दी :

"भगवान आपका मनचाहा पूरा करे। सदा सुहाग बना रहे।"

घुड़सवारों की एक टोली को रबाड़ी, नदी के किनारे, साधु के वेश में, माला जपते मिला। उसे आदरसहित महल लाये। उसके लौटने पर राजकुमारी गद्‌गद् हो गई। राजा ने उसे अपना वारिस घोषित किया।

रबाड़ी के दिन फिर गये।

ठगों ने भी अपना धंधा छोड़ दिया। वे भले इन्सान बन गये।

4

चतुर किसान और लोभी व्यापारी

वह किसान अपने खेत में धान रोप रहा था। उसे एक अनसुनी आवाज़ सुनाई दी। आँख उठाकर ऊपर देखा। एक पक्षी आकाश में उड़ान भर रहा था। उसका बड़ा आकार था, इन्द्रधनुषी डैने थे, घुमावदार चोंच थी। किसान ने ऐसा पक्षी पहले कभी नहीं देखा था। वह एकटक उसे निहारता रहा। निहारते-निहारते अपने में खो गया।

सहसा उसने एक करुण पुकार सुनी। देखा, एक तीर पक्षी को बेध गया था। चकफेरियाँ खाता वह धरती की ओर आ रहा था। किसान से कुछ दूर गिरा। वह लपककर वहाँ पहुँचा। पक्षी पीड़ा में तड़प रहा था। किसान ने बड़ी सावधानी से उसे उठाया, गोद में भरा और घर ले आया। उसने और उसकी पत्नी ने बड़े स्नेह और दुलार से पक्षी का इलाज किया। कुछ दिनों में वह स्वस्थ हो गया। उन्होंने उसे खुले में छोड़ दिया। वह कहीं नहीं गया। पालतू बनकर वहीं रहने लगा। सवेरे-शाम उसे चुग्गा मिल जाता। प्यास बुझाने एक कूंडी में पानी भरा रहता। कभी-कभी किसान उसे कंधे पर बैठा कर खेत ले जाता। वहाँ से उड़कर वह घर लौट आता।

किसान सूरज निकलते अपने खेत चला जाता था। दोपहर को पत्नी पोटली में दो रोटी और चिलम तम्बाकू दे आती थी। यह काम किसान ने पक्षी को सिखा दिया। पत्नी उसके पैरों में पोटली बाँध देती। वह उड़कर खेत पर दे आता। पत्नी को आराम हो गया।

उस दिन किसान खेत पर था। पड़ोस के कस्बे का एक व्यापारी पैदावार का सौदा करने आया था। बातचीत चल रही थी। तभी पक्षी उड़ता हुआ वहाँ आया। किसान ने पोटली खोलकर ब्यालू किया, फिर चिलम भरी। व्यापारी को भी पिलाई।

उस सीखे, सधे पक्षी को देख कर व्यापारी का मन ललचा गया। सोचा,

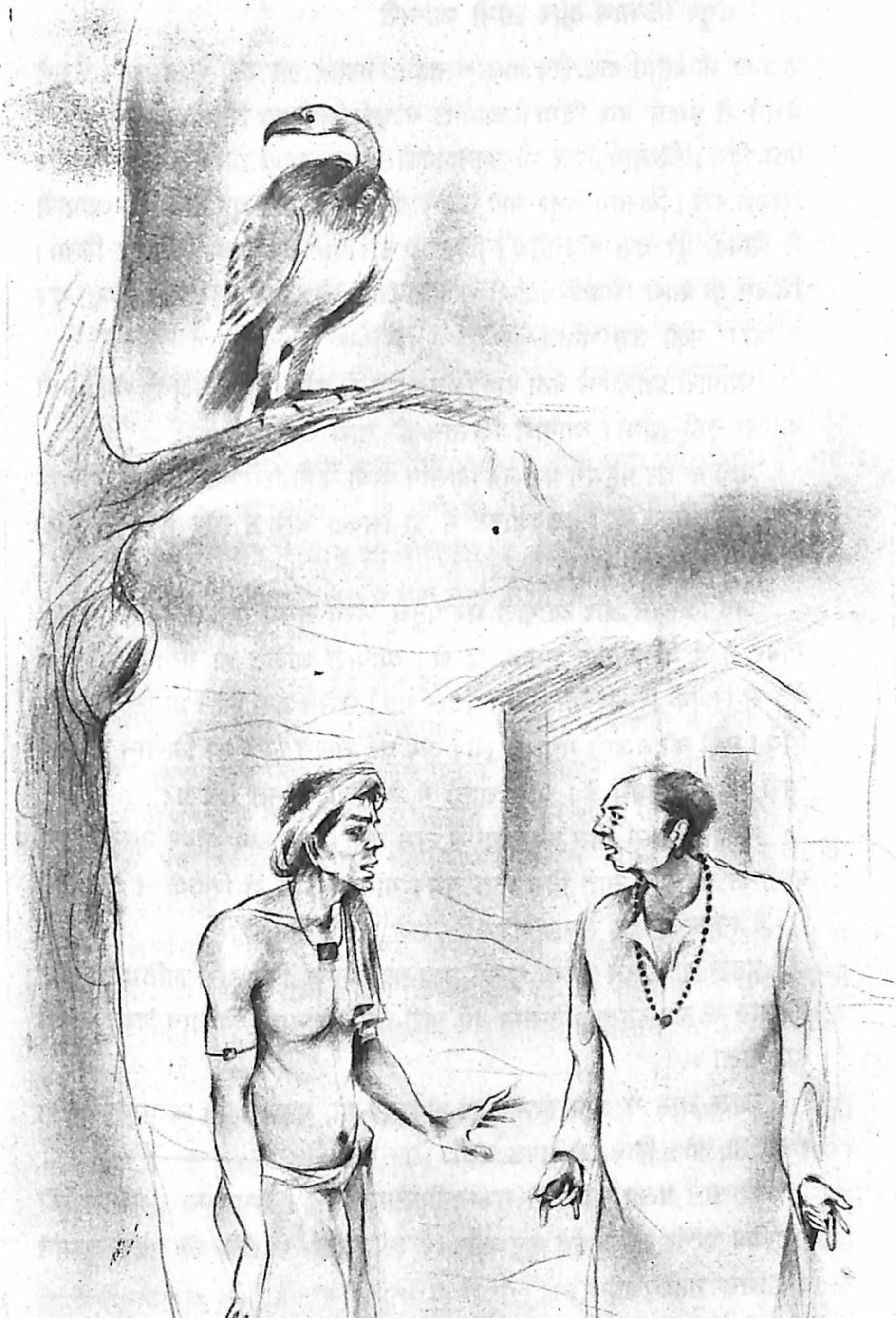

उसका भी सौदा कर ले। बात चलाई। किसान को पक्षी प्यारा था। उसने बेचने से इंकार कर दिया। व्यापारी ने चार सोने के सिक्के उसके सामने रख दिये। किसान फिर भी आनाकानी करता रहा। व्यापारी ने और चार सिक्के रखे। किसान चतुर था। उसने चाल चली। वह चुप हो गया। व्यापारी ने सिक्के पूरे दस कर दिये। किसान ने सौदा करने का दिखावा किया। चिलम के साथ सिक्के पोटली में बाँध दिये और पक्षी से कहा : "जा, घर दे आ।" पक्षी उड़ गया।

व्यापारी प्रतीक्षा में बैठा रहा। बहुत देर हो गई। सूरज ढलने लगा। पक्षी वापिस नहीं आया। व्यापारी किसान के साथ घर चला।

पक्षी के घर पहुँचने पर जब किसान पत्नी ने पोटली खोली थी तो सिक्के देख कर चौंकी थी। हड़बड़ाहट में दो सिक्के चारे में गिर गये थे। चारा गाय ने खा लिया था।

जब किसान और व्यापारी घर पहुँचे, उसी समय गाय ने गोबर किया। गोबर में वे दो सिक्के चमक रहे थे। व्यापारी चकित हो गया। "गाय के पेट से सिक्के !" उसकी नीयत बदल गई। उसने दस सोने के सिक्के और दिये। पक्षी की बजाय गाय ले ली। जब वह चलने लगा तो किसान ने कहा "मेरी गाय कामधेनु है। चारा-सानी में कंजूसी ने मत करना।"

व्यापारी स्वयं गाय की सेवा में लग गया। जब जब गोबर करती, उसे पानी से बहाता। सात दिन बीत गये। गाय के पेट से सिक्के न निकलने थे, न निकले। वह समझ गया कि उसे छला गया है।

पहले तो उसने अपना गुस्सा गाय पर उतारा, फिर उसे लठियाता हुआ किसान के घर लाया। किसान को खरी-खोटी सुनाई। किसान शान्त करते हुए बोला :

"इस ग्राम में आप इतनी दूर से आये हो, पहले कुछ जलपान करो। ठण्डे हो लो। फिर जो दण्ड दोगे, सिर माथे।"

किसान पत्नी थाली में गुड़धानी लेकर आई। उसने पास पड़ी सोंटी उठाकर पत्नी के जमाते हुए कहा : "अरी मूर्ख, सेठजी की प्यास बुझाने को छाछ नहीं लाई।"

पत्नी कुटिया में चली गई। थोड़ी देर बाद छाछ लेकर कुटिया से जो निकली वह एक सुंदर स्त्री थी। उसके भी सोंटी जमाते हुए किसान ने हुक्म दिया : "जा, थोड़ी गुड़धानी और ला।"

गुड़धानी लानेवाली पहली अधेड़ उम्र की औरत थी। फिर सोंटी जमा कर फिर छाछ मँगाया। वह सुंदर स्त्री लाई।

व्यापारी ने सोचा, यह सोंटी का कमाल है जो बुढ़िया को जवान औरत और जवान औरत को बुढ़िया बना देती है।

हुआ यह था कि किसान ने व्यापारी को गाय के साथ आते देख लिया था। उसके तेवर से वह पहचान गया था कि व्यापारी का पारा चढ़ा हुआ है। पत्नी और बेटी की मिलीभगत से यह नाटक रचा गया था। पत्नी और बेटी बारी-बारी से गुड़धानी और छाछ लाती गईं। व्यापारी समझा यह सोंटी का जादू है।

व्यापारी गााय की बात भूल गया। उसकी बीवी बुढ़ा गई थी। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। एक सोंटी खाते ही जवान हो जायेगी। उसके मन में गुदगुदी होने लगी। किसान को बीस सिक्के और दिये और सोंटी माँग ली।

चलते समय किसान ने और भुस लगा दी। "सोंटी जितनी जमकर मारोगे खूबसूरती उतनी ही निखरेगी।"

व्यापारी घर लौटने को उतावला हो रहा था।

बीवी पर सोंटी का चमत्कार करने से पहले व्यापारी ने उस पर रोब जमाना चाहा। घर पहुँचते ही जलपान की फ़रमाइश की। आवाज़ में अकड़ थी। बीवी को कुछ विलम्ब हुआ तो उसने जमकर सोंटी जड़ दी। बीवी सुंदरी तो नहीं बनी, चण्डी बन गई। व्यापारी के हाथ से सोंटी छीनकर, उसी की धुनाई कर दी।

किसान ने फिर उसके साथ धोखा किया। वह गुस्से में भरकर घर से निकला। दो चाकर साथ लिये। किसान की कुटिया पहुँच कर उसमें पलीता लगा दिया। फूस की कुटिया जलकर राख हो गई। किसान, पत्नी, पुत्री देखते रह गये।

बैल के सायेबान में कुछ बोरियों में कुट्टी भरी थी। किसान ने दो बोरी ख़ाली करके उसमें राख भरी और बैल पर लाद कर शहर की ओर चला।

रास्ते में एक पेड़ के नीचे कुछ लोग बैठे, बतिया रहे थे। वे लोग लगान वसूल करके राज के ख़ज़ाने में जमा करवाने शहर ले जा रहे थे। बोरियों में सिक्कों से लदी बैलगाड़ी पास खड़ी थी। उन लोगों की बात किसान के कानों में पड़ी। उसे एक चाल सूझी। उसने उन आदमियों से कहा, वह भी शहर गल्ला बेचने जा रहा है। उसे भी अपने साथ चलने की अनुमति दें। साथ में रास्ता आसानी से कट जायेगा। वे मान गये।

वे थके हुए थे। कुछ देर आराम करने लेट गये। जब उनकी नाक बजने लगी तो किसान् दबे पैर उठा, कुछ पत्थर चुने, अपनी एक राख की बोरी में भरे और उस बोरी को बैलगाड़ी में रखकर एक सिक्के भरी बोरी निकाली, उसे अपने बैल पर लादा और वहाँ से चम्पत हो गया।

कुछ दिन बाद व्यापारी इधर से निकला तो देखा कि जहाँ फूस की कुटिया भस्म हुई थी वहाँ एक ईंट-पत्थर का मकान खड़ा है। उसके सामने चारपाई पर बैठा किसान मौज से चिलम पी रहा है। उसे आश्चर्य हुआ, किसान के पास पैसा कहाँ से आया। उसकी टोह लेने किसान से बात चलाई।

"अरे सेठ साहब, यह तो आपकी ही कृपा का फल है। आपने मेरी कुटिया फूँकी, मैने शहर जाकर राख बेची। उससे इतना रूपया मिल गया कि यह मकान खड़ा हो गया। आपके पास तीन-चार मकान हैं। एकाध फूँक कर राख की दुकान खोल लो। धन बरसेगा।"

व्यापारी ने घर पहुँचकर रुपया और ज़ेवर थैलियों में भरे और अपने दो मकानों में आग लगा दी। जब आग भड़क कर पास के मकानों तक फैली तो पड़ोसियों ने उससे पकड़कर मारा-पीटा—घूसों से, लातों से, जूतों से और मोहल्ले से निकाल दिया।

इस अपमान ने व्यापारी को गुस्से में पागल बना दिया। वह किसान की जान लेने पर उतारू हो गया। सीधा उसके खेत पहुँचा, डंडे बरसाये और हाथ-पैर बाँधकर एक बोरे में भरा और उसे सुतली से सीकर पास की नदी में फेंक दिया। किसान चिल्लाता रहा : "बचाओ, बचाओ।"

पालतू पक्षी ने किसान की आर्त पुकार सुनी। वह उधर उड़ा। बोरा पानी में एक चट्टान से टकरा कर रुक गया था। पक्षी ने बोरे पर बैठकर अपनी चोंच से सिलावन की डोरी काट दी। किसान बोरे से निकल तैरकर किनारे आ गया। वहाँ एक घोड़ा घास चर रहा था। उस पर सवार होकर किसान व्यापारी के घर के सामने से दौड़ाता हुआ निकला। पक्षी उसके ऊपर उड़ रहा था।

व्यापारी ने उसे देख लिया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न था। किसान को रोककर पूछा, वह नदी से कैसे निकला।

किसान हाथ बाँधकर, बड़ा विनीत होकर बोला : "सेठजी, आप मेरे ऊपर उपकार ही उपकार करते रहे हो। पहले कुटिया फूँकी तो उसकी राख बेचकर मैंने मकान बनवाया। अब आपने नदी में फेंक दिया तो यह घोड़ा मिला।"

"वह कैसे ?"

"नदी के पेंदे में बढ़िया नस्ल के घोड़ों की घुड़साल थी। मैने उनमें से एक पसन्द किया। अब घर जाने की जल्दी में हूँ। बुढ़िया को चिन्ता हो रही होगी। अच्छा, राम राम !"

"क्या मुझे भी ऐसा घोड़ा मिल सकता है ?" सेठ पर लालच सवार होने लगा था।

"क्यों नहीं। जो और जितने पसन्द करो मिल सकते हैं।"

"मैं वहाँ कैसे पहुँच सकता हूँ ?"

"मै आपकी सेवा करने को तैयार हूँ। आप ज़ब आज्ञा करें, आपको बाँध कर नदी में डाल आऊँगा। सीधे घुड़साल पहुँच जायेंगे।"

मछली काँटे में मुँह मारने को बेताब थी। व्यापारी स्वयं बोरा और रस्सी लाया। किसान ने मोटे पत्थर भरकर, व्यापारी को बोरे में बाँधा और नदी में डाल दिया। बोरा पत्थरों के बोझ से पेंदे में बैठ गया। पानी में कुछ बुलबुले उठे और शान्त हो गया।

किसान ने घोड़ा वहीं छोड़ा। पालतू पक्षी को कंधे पर बैठाया। एक दिन किसान ने उसकी जान बचाई थी, आज पक्षी ने किसान की जान बचाई।

वह मगन मन घर आया।

अब उसे व्यापारी से हमेशा-हमेशा के लिए छुटकारा मिल गया था।

5

पंजफूलरानी

पाँच नदियों के देश का एक राजा था। उसके सात बेटे थे। उसकी इच्छा थी कि उनका ऐसे राजघरानो में ब्याह हो जिसमें सात बेटियाँ हों। उसने राजपंडित को दरबार में बुलाया और कहा, अपना पोथी-पतरा देख- कर बताये कि क्या ऐसा हो सकता हे। पंडित ने बेटों की जन्म-कुण्डलियाँ देखीं, कुछ हिसाब लगाया, फिर बोला :

"महाराज ऐसा जोग तो बनता है। उत्तर दिशा में कोई राज होना चाहिये जहाँ सात बेटियाँ हों।"

सुनकर राजा प्रसन्न हो गया। आदेश दिया : "पंडितजी, फिर विलम्ब न कीजिए। अपने साथ एक शिष्य लीजिये और उस राज की खोज में निकल जाइये।"

राजा ने पंडित को सोने की सौ अशर्फ़ियाँ दीं।

पंडित और शिष्य ने सतलुज नदी के किनारे रैनबसेरा किया। सवेरे स्नान किया, पूजा की, कलेवा किया और आगे बढ़ने को सामान समेटने लगे।

वहाँ कुछ और लोग भी स्नान करने आये थे। उनमें से एक बूढ़ा, तिलकधारी पंडित के पास आया।

"महाराज यहीं बसते हैं ?"

"नहीं।"

"कहीं दूर से पधारे हैं ?"

"हाँ, लम्बी यात्रा पर हैं।"

"किस दिशा में?"

"उत्तर की।"

"किस स्थान को ?"

"यह नहीं मालूम।"

बूढ़ा तिलकधारी हँसा। ''महाराज हमारें साथ ठिठोली कर रहे हैं। आप जैसा ज्ञानी यह न जाने उसे कहाँ जाना है ? कैसे मान लूँ ?''

पंडित ने अपनी यात्रा का तात्पर्य बताया। सुनकर तिलकधारी खिल उठा।

''वाह, भगवान की कैसी माया है ! क्या संजोग मिलाया है ! हम भी आप जैसी खोज पर निकले हैं। हमारे राजा की सात बेटियाँ हैं। वह भी उन्हें ऐसे राजघराने में ब्याहना चाहते हैं जिसमें सात बेटे हों और, हमारा राज भी आपके राज के उत्तर में है।''

दोनों पंडितों ने कुण्डलियाँ निकालीं। ग्रह मिलते थे। एक दूसरे को बधाई दी और गले मिलकर विदा ली।

लौटकर पंडित ने अपने राजा को सूचना दी। लगन की तिथि निश्चित हुई। धूमधाम से तैयारियाँ होने लगीं।

बारात चलने के एक दिन पहले सबसे छोटा बेटा राजा के पास आया। कहने लगा : '' पिताजी, हम सब चले जायेंगे तो नगर की रक्षा कौन करेगा ? किसी शत्रु ने हमला कर दिया तो ?''

''हमारी सेना करेगी।''

''और उसका सेनापति कौन होगा ?''

''तुम कहना क्या चाहते हो ?''

''सेना आपके और हम भाइयों के अधीन है।''

''हाँ, है।''

''जब यहाँ कोई नहीं रहेगा तो उसे हुक्म कौन देगा ? राज छिन गया तो हम कहाँ जायेंगे ?''

राजा ने यह नहीं सोचा था। उसने पूछा : ''तुम्हारा क्या सुझाव है ?''

''आप मेरे और भाइयों को ले जायें और उनका ब्याह करा लायें।''

''और तुम्हारा ?''

''जब समय आयेगा, हो जायेगा।''

न चाहतेभी राजा को उसकी बात माननी पड़ी। वह बेटा महल में रह गया। उसके साथ उसकी बुआ थी।

नहा-धो, बन-सँवरकर राजकुमार भोजन पर बैठा तो बुआ ने छेड़ा : ''क्यों रे, आज बड़ा छैला बना हुआ है। लगता है मानों पंजफूलरानी से ब्याह रचाने जा रहा है।''

वह तुनक गया। ''यह पंजफूलरानी कौन है ?''

"दुनिया की सबसे सुंदर राजकुमारी है।"

"कहाँ रहती है ?"

बुआ ने व्यंग्य किया : "यह मैं क्या जानूँ ? जिसे ब्याहना है वही ढूँढ़ेगा।"

बिना खाये राजकुमार उठ गया। "बुआजी,यह पंजफूलरानी कोई भी हो। कहीं भी रहती हो, जब तक उसे तुम्हारी बहू बनाकर नहीं लाऊँगा, तुम्हारा परसा भोजन नहीं करूँगा।"

और वह तेज़ी से महल से बाहर निकला। द्वार पर एक बुढ़िया भिखारिन खड़ी थी। उसने आवाज़ दी : "बेटा सुनो। बहुत कष्ट में हूँ। तुम राजा के बेटे हो। मेरी सहायता कर सकते हो।"

बुढ़िया रास्ता रोककर खड़ी हो गई। राजकुमार ने उसे एक ओर झटक दिया। "हट जाओ, मेरे पास समय नहीं है।"

बुढ़िया तिलमिला गई। "कैसा समय आ गया है ? राजा के बेटे के पास प्रजा के लिये समय नहीं है ! यह तो ऐसी जल्दी में है जैसे पंजफूलरानी को ब्याहने जा रहा है।"

फिर वही नाम, पंजफूलरानी ? उसके लिये पहेली बन गया। उसने बुढ़िया से पूछा : "यह पंजफूलरानी कौन है, कहाँ रहती है, तू जानती है ?"

"पंजफूलरानी को मूरख नहीं जानता तो जा, मैं भी नहीं बताती। आप ही पता लगा ले।" बुढ़िया तिरस्कार का बदला ले रही थी।

और जब राजा, बेटों का ब्याहकर घर लौट आये, एक सवेरे छोटा राजकुमार पंजफूलरानी की खोज में निकल पड़ा।

वह अकेला था।

एक पेड़ के नीचे चार साधु आपस में लड़-झगड़ रहे थे। राजकुमार ने पास जाकर कारण पूछा। उनके गुरु का स्वर्गवास हो गया था। वह अपने पीछे एक झोला, एक लाठी, एक कमण्डल और एक जोड़ी खड़ाऊँ छोड़ गये थे। उन्हीं को लेकर कलह मची हुई थी। कोई एक चीज़ उठाता तो दूसरा उसके हाथ से झपट लेता। कोई एक चीज़ किसी दूसरे को देने को तैयार नहीं था।

राजकुमार को अचरज हुआ। उसने कहा : "ये बड़ी साधारण चीजें हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। इनके लिये इतनी तू-तू मैं-मैं क्यों मचा रहे हैं? मिल-बैठकर बाँट लीजिये।"

सब एक साथ बोले : "आप अजनबी हैं, आप क्या जानें इनकी कीमत और कमाल।"

फिर एक बोला : "यह झोला है, इसमें दो बुकची है। पहली बुकची खोल कर किसी को सुँघा दे तो आप जो चाहें उसे बना सकते हैं—जानवर, पेड़, पौधा। दूसरी बुकची खोलकर सुँघाने से किसी वस्तु को मनुष्य बना सकते हैं।

दूसरा बोला : "यह लाठी किसी मृत शरीर को तीन बार छुआ दी जाये तो उसमें फिर प्राण पड़ सकते हैं।"

तीसरा बोला : "इस कमण्डल से आपको छत्तीस प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन मिल सकते हैं।"

और चौथा बोला : "इन खड़ाऊँ को पहनकर आप जहाँ चाहे उड़कर जा सकते हैं।"

फिर सब एक साथ बोले : "अब आप ही बतायें हम कौन-सी वस्तु किसको लेने दें। हम निर्णय नहीं कर पा रहे हैं। आप ही कोई उपाय सुझायें।"

"आप सब मेरी बात मानेंगे?"

"हाँ, हम वचन देते हैं।"

"मेरे पास तीर कमान हैं। मैं चार तीर लेता हूँ। हर तीर पर एक वस्तु का नाम लिखकर चार दिशाओं में छोड़ता हूँ। आपको तीर खोजने होंगे। जिसको, जिस वस्तु का तीर मिलेगा, वह उसकी होगी। तीर छोड़ते समय सब आँखें बंद रखेंगे।"

साधुओं ने हामी भर ली।

राजकुमार ने तीर छोड़े। साधु उनके पीछे दौड़े। जैसे ही वे आँख ओझल हुए, उसने झोला, लाठी और कमण्डल अपने हाथ में उठाये, खड़ाऊँ में पैर डाले और उन अनजान गुरु का ध्यान करके बोला : "खड़ाऊँ, ले चलो मुझे पंजफूलरानी के नगर।"

वह हवा में उड़ने लगा। पहाड़ों के बीच तलहटी में एक सुंदर नगर बसा हुआ था। उसके बाहर, पेड़ों के एक झुरमुट के पास खड़ाऊँ ने उसे उतार दिया। उसने खड़ाऊँ बग़ल में दबाई। कुछ दूर एक कुटिया थी। वहाँ पहुँचकर उसने कुटिया का द्वार खटखटाया। एक बुढ़िया ने खोला।

"माई, कुछ दिन ठहरने को जगह मिल जायेगी ?"

राजकुमार ने दो अशर्फियाँ, जेब से निकालकर, उसके आगे बढ़ा दीं। बुढ़िया की आँखों में चमक आ गई।

"क्यों नहीं, क्यों नहीं। आओ बेटा, अंदर आ जाओ।"

एक छोटी-सी कोठरी थी। उसे दिखाकर बोली : "बस, यही मेरे पास है। पसन्द हो तो यहाँ ठहर सकते हो।"

उसने अपना सामान एक कोने में रख दिया।

बुढ़िया ने बात चलाई। "दूर से आ रहे हो ? थक गये होगे। कुछ चने चबेने का जुगाड़ करती हूँ।"

"नहीं माई, मेरे पास सब है। आज आप मेरे साथ भोजन करेंगी।"

"तुम पकाओगे ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"मैंने कहा न, मेरे पास सब है। आप हाथ-मुँह धोकर आइये। मैं प्रबन्ध करता हूँ।" बुढ़िया अचरज में थी। उसके जाते ही राजकुमार ने धरती साफ़ की। आसन बिछाये और कमण्डल निकाला। आँखें बंद कीं और वर माँगा :

"कमण्डल रे कमण्डल, गुरु की कृपा से मेरे और माई के लिये छत्तीस व्यंजन की व्यवस्था हो।"

उसके सामने दो सजे-सजाये थाल प्रकट हो गये। भोजन देखकर बुढ़िया की आँखें फटी-की-फटी रह गईं। उसने चट-चटकर खाया। राजकुमार को असीसें दी।

वह वहीं रहने लगा। बुढ़िया को रोज़ दो अशर्फ़ियां मिलतीं, नये-नये पकवान मिलते। उसकी खुशी का ओर था न छोर।

एक शाम दोनों कुटिया के बाहर बैठे थे। सूरज डूब चुका था। तारे झिलमिलाने लगे थे। राजकुमार ने पूछा : "माई, वह सामने पहाड़ी पर, जहाँ रोशनी चमक रही है, किसका महल है ?"

"हमारे राजा की बेटी का," और थोड़ा हँसकर बोली, "और वह रोशनी नहीं है।"

"तो ?"

"वह हमारी राजकुमारी पंजफूलरानी का मुख है। पूरनमासी के चाँद-सा दमकता है। रात को जब वह टहलने के लिये महल की छत पर चढ़ती है, तो मीलों दूर से देखा जा सकता है।"

"पंजफूलरानी ?"

"हाँ बेटा, उस जैसी सुंदर राजकुमारी कहीं हुई है न होगी।"

"माई तुम ठीक कहती हो। मैंने भी यही सुना है।"

अगले दिन, बड़े तड़के, नहा धो, सज-सँवरकर राजकुमार तैयार हुआ। खडाऊँ में पैर डाले और आदेश दिया : "खड़ाऊँ, री खड़ाऊँ मुझे ले चल पंजफूलरानी के पास।"

क्षण भर में वह पंजफूलरानी के कक्ष में था। उसे देखकर पहले वह मुसकराई, फिर रोने लगी। वह कुछ समझ नहीं पाया। सहसा रोने का कारण पूछा। सुबकते-सुबकते वह कहने लगी :

"तुम्हारा रूप देखकर मैं मुसकराई। फिर मुझे डर लगा। अभी महल की मालिन आती होगी। वह रोज़ सवेरे मुझे हज़ारा गेंदे के फूलों से तौलती है। मेरा वज़न पाँच फूल से अधिक नहीं बढ़ना चाहिये। आज मैंने तुम्हें देखा है। मैं फूली नहीं समा रही हूँ। मेरा वज़न बढ़ जायेगा। मालिन राजा से शिकायत करेगी। राजा ने तुम्हें देख लिया तो मार डालेगाा। तुम यहाँ से चले जाओ। अभी, एकदम।"

राजकुमार ने हिम्मत बँधाई। "मुझे कोई नहीं मार सकता। मैं जहाँ चाहूँ, जब चाहूँ, आ-जा सकता हूँ। मैं रात को फिर आऊँगा, इसी जगह।"

राजकुमारी का डर सही निकला। उसका वज़न पाँच हज़ारा गेंदे के फूलों से अधिक बढ़ गया था। दूसरे दिन, राजकुमार के जाने के बाद, पचास फूल से अधिक और तीसरे दिन तो महल के बाग़ के जितने फूल थे, वे भी राजकुमारी को तोलने में कम पड़ गये।

राजा ने सुना तो क्रोध से बौखला गया। उसे संदेह हुआ कि कोई पुरुष राजकुमारी के पास आता है। डाँट-डपटकर पूछा। राजकुमारी चुप रही।

राजा ने हुक्म दिया, राजकुमारी के महल के चारों ओर ख़ाई खोदकर उसमें नीला पानी भरवा दिया जाये। पहरा कड़ा कर दिया गया।

अँधेरा पड़ने पर जब राजकुमार आया, हर दरवाज़े पर बल्लमधारी सन्तरी खड़े थे। आने की जल्दी में वह खड़ाऊँ घर भूल आया था। उसने इधर-उधर देखा। एक खिड़की खुली थी। उसे तरकीब सूझी। खाई के पार तैर-कर, वह खिड़की से होकर राजकुमारी के कक्ष तक पहुँच जायेगा। जैसे ही पानी में कूदा, उसके कपड़े नीले रंग गये। उसे देखकर राजकुमारी फूट-फूट कर रोने लगी।

"इन कपड़ों में तुम पकड़े जाओगे। राजा तुम्हें फाँसी पर चढ़ा देगा। मेरे लिये तुम्हारी जान जायेगी। मैं क्या करूँ, तुम्हें कैसे बचाऊँ ?"

राजकुमार ने उसे शान्त किया। "मेरी चिन्ता मत करो। मेरा कोई कुछ

नहीं बिगाड़ सकता। अभी मैं जा रहा हूँ। फिर आऊँगा।"

घर लौट कर उसने कपड़े बदले और एक धोबी को दे आया। हाथ में एक अशर्फ़ी रखते हुए कहा : "रात में ही रंग निकालकर सुखा देना।"

धोबी के बेटे की शादी थी। धोबिन ने क़ीमती कपड़े देख लिये थे। उसे लालच आ गया। इनमें मेरा बेटा बड़ा जँचेगा। उसने धोने नहीं दिये। जब बारात निकली, दूल्हा वे ही कपड़े पहने हुए था। राजा के सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। डरा-धमकाकर पूछताछ की। धोबी ने बता दिया कपड़े कौन दे गया था। उसका पता भी।

जब सैनिक बुढ़िया की कुटिया पहुँचे, राजकुमार वहीं था। वे उसे राजा के सामने ले गये। उसने स्वीकार किया कि वह पंजफूलरानी के पास आता जाता था। उसने यह बताने से इंकार कर दिया कि वह वहाँ कैसे पहुँचता था। उसे फाँसी की सज़ा हुई। उसने राजा से एक बिनती की। फाँसी चढ़ाये जाने से पहले, उसे बुढ़िया से मिलने दिया जाये, अकेले में। वह पास ही खड़ी थी। विलाप कर रही थी। राजा मान गया।

राजकुमार बुढ़िया को ज़रा दूर ले गया। "माई, तुमने मेरे कमरे में एक लाठी देखी है।"

"हाँ बेटा। क्यों ?"

"माई, फाँसी के बाद जब ये तुम्हें मेरी लाश दें, उसे तीन बार लाठी से छुआ देना। मैं जी जाऊँगा। लाठी एक पहुँचे हुए महात्मा ने मुझे दी है। विश्वास मानो, मैं जी जाऊँगा।"

वैसा ही हुआ।

उसी रात राजकुमार, खड़ाऊँ पहन, उड़कर पंजफूलरानी के कक्ष में पहुँचा। वह सो रही थी। उसने झोले से पहली बुकनी निकालकर पंजफूलरानी को सुँघा दी।

बिस्तरे में ही वह राजकुमारी से बंदरिया बन गई। राजकुमार वहाँ से चला आया। राजकुमारी की नींद टूटी तो अपना बदला हुआ तन देखकर भौंचक रह गई। शीशे में अपनी छवि देखी तो खिखियाने लगी। सवेरे जब मालिन उसे तौलने आई तो वह उस पर झपट कर नौहट्टे मारने लगी। लहू से लथपथ मालिन, दुहाई देती, राजा के पास पहुँची।

"सरकार, राजकुमारी न जाने कहाँ गई, वहाँ तो एक बंदरिया हुड़दंग

मचा रही है। कहीं किसी मुँहजले ने जादू तो नहीं कर दिया। उसकी जून ही बदल दी हो।"

राजा दौड़ा आया। बंदरिया उस पर भी झपटी। वह जान बचाकर भागा। महल में हड़कंप मच गया।

कंधे पर झोला डाले, एक नौजवान साधु सड़क पर आवाज़ लगा रहा था : "कैसा जादू-मन्तर है। यह भोले शंकर का वरदान है। साधु का प्रसाद है। बना दे आदमी को जानवर और जानवद को आदमी। एक बार आज़मा करें देखो। जय, जय भोले शिव शंकर।"

महल के चाकरों ने सुना। राजा को सूचित किया। उसने साधु को बुलाया। हाथ जोड़कर प्रार्थना की :

"महात्मा, आप मेरी बेटी को उसकी अपनी जून में वापिस ले आयें। मैं आपकी हर इच्छा पूरी करूँगा।"

"महाराज यह काम मैं कर तो दूँगा पर इसमें समय लगेगा।"

"आप जितना चाहें।"

"तो आप मुझे राजकुमारी के कक्ष में ले चलिये। मैं वहीं भगवान भोलेनाथ का अलख जगाऊँगा। मेरे काम में कोई विघ्न डालने न आये। मुझे छह महीने लग सकते हैं।"

राजा ने स्वीकार कर लिया।

बंदरिया बिस्तरे में आँखें मूँदे पड़ी थी। राजा और साधु बने राजकुमार के कक्ष में आने पर वह हिली-डुली न आँखें खोलीं। राजा के जाते ही राजकुमार ने झोली से दूसरी बुकनी निकाली और उसे सुँघा दी। पंजफूलरानी अपने असली रूप में आ गई। राजकुमार को देखकर वह घबराई। उसे फाँसी लग चुकी थी। यह उसका भूत तो नहीं है। राजकुमार ने सारा रहस्य समझाया। दोनों हँसी-खुशी रहने लगे। उनके कक्ष में कोई नहीं आता।

छह महीने बीत गये।

राजा बेताब पंजफूलरानी के कक्ष में आया। बेटी को देखकर वह गद्‌गद् हो गया। राजकुमार ने अपनी पहचान बताई। क्यों घर से निकला था, यह कथा सुनाई। राजा ने उसकी इच्छा पूरी करने का वचन दिया था। दोनों का विवाह हो गया।

पंजफूलरानी को लेकर राजकुमार घर लौटा। कुटिया की मालकिन बुढ़िया को भी साथ लाया। वह सीधा अपनी बुआ के पास गया।

"बुआजी, यह पंजफूलरानी है, आपकी बहू ! बड़ी भूख लगी है, भोजन परोसिये।"

बुआ ने दोनों की बलैया लीं।

राजकुमार ने उस भिखारिन को भी, जिसने ताना मारा था, ढुँढ़वाकर ग्यारह अशर्फियाँ भेंट कीं।

6

फ़ातेह ख़ाँ उर्फ़ फत्तू का कमाल

उसका नाम था फातेह ख़ां और काम था जुलाहे का।

गिटका-सा आदमी था। सिर अवश्य गोल-मटोल था लेकिन शरीर एकदम सींकिया। टिटिहरी-सी टाँगें थीं, खपच्ची-से हाथ। पास-पड़ोसवाले उसे फत्तू पुकारते थे। नाम बिगाड़ने से उसे चिढ़ थी। गुस्सा आता तो अपने से भारी भरकम लोगों को भी खरी-खोटी कहने में नहीं चूकता। उसकी बोली कड़वी थी।

तन से भले ही छोटा हो, मन से फत्तू निडर था। चाल-ढाल में भी फुर्तीला। अपने धंधे में धुनी। जो काम उठाता उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ता। तब उसे भूख सताती न प्यास।

एक दिन फत्तू अपने करघे पर कपड़ा बुन रहा था। जैसे ही तकुआ फेंका, उसके बायें हाथ पर लगा। वहाँ एक मच्छर बैठा था। तकुए की चोट से मर गया। फत्तू खुशी से चीख़ उठा : "मैंने कमाल कर दिया।"

लोगों ने सुना। उन्हें अचरज हुआ, क्या कमाल हो गया। फत्तू से पूछा : "क्या हुआ ?"

वह छाती फुलाकर बोला : "मैंने तकुए से मच्छर का शिकार कर दिया। आप लोग तीर से, तलवार से, आदमी का, जानवर का शिकार कर सकते हैं। वे इतने बड़े होते हैं कि निशाना बाँधने में कोई कमाल नहीं होता। आप मच्छर भी मार सकते हैं, तकुआ फेंक सकते हैं, लेकिन तकुए से मच्छर मैं ही मार सकता हूँ। मैंने कमाल कर दिया, मैंने, फ़ातेह ख़ाँ ने।"

वह फूला न समा रहा था। किसी ने समझाया : "फ़ातेह ख़ाँ, कभी-कभी अचानक ऐसा हो जाता है। इतनी डींग मारने की क्या बात है ?"

वह तमक गया। "जो कोई नहीं कर सकता वह मैंने कर दिखाया। यह कमाल नहीं तो क्या है ? आप लोग जलते हो।"

वह घर गया। बीवी से बोला : "अब मैं इस गाँव में नहीं रहूँगा। दुनिया में अपनी बहादुरी का डंका बजवाकर ही लौटूँगा। तब ये लोग मानेंगे। तू मेरे सफ़र के लिये कुछ पकाकर पोटली में बाँध दे।"

फत्तू और उसकी बीवी में खटपट रहती थी। ज़रा-सी बात पर उसे डाँट देता था। हाथ भी उठा देता था। वह भी चुप नहीं रहती थी। दो की चार सुनाती थी। फिर भी उसका आदमी था। मूर्खता कर रहा था। उसने मनाना चाहा :

"वे तुम्हारे अपने लोग हैं। सही कह रहे हैं। अचानक वार लगने से क्या कमाल हो गया ? तुम मत जाओ।"

फत्तू बीवी पर बरस पड़ा। "तू भी उनके साथ हो गई है।" और पाँच दस धौल जमा दिये। उसने अंगारे भरी आँखों से फत्तू को देखा। दोनों में गुत्थमगुत्था हो गई। फत्तू ने बीवी की बुरी गत बनाई। भुनभुनाते हुए उसने रसोई में जाकर हलुआ पकाया, पोटली बाँध फत्तू के हाथ में थमाई और आँखों से ओझल हो गई।

फत्तू ने एक झोली में अपना प्यारा तकुआ और कुछ कपड़े डाले, पोटली उठाई और घर से निकल पड़ा।

चलते-चलते वह एक स्थान पर पहुँचा जहाँ कोहराम मचा हुआ था। एक कुचला हुआ आदमी धरती पर पड़ा था और उसके घरवाले विलाप कर रहे थे।

पास के जंगल में एक हाथी रहता था। आये दिन वह इधर आकर किसी न किसी को पैरों तले रौंदकर मार डालता था। बड़े-से-बड़े सूरमा उसे वश में करने में प्राण गँवा चुके थे।

फत्तू ने सोचा अपनी धाक जमाने का यह अच्छा अवसर है। सबसे बोला :

"आप लोग चिन्ता न करें, मैं इस हाथी को ठिकाने लगा दूँगा। आप मेरा कमाल देखिये।"

फत्तू अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि लोग इधर-उधर भागने लगे। तेज़ चाल से वह हाथी, चिंघाड़ता हुआ, उधर ही आ रहा था। फत्तू ने पहले कभी हाथी नहीं देखा था। उसका पहाड़-सा डीलडौल देखकर उसके प्राण सूख गये। वह भी सिर पर पैर रखकर भागा। खाने की पोटली वहीं छूट गई।

हाथी फत्तू की ओर ही आ रहा था। उसने पोटली सूँड से उठाकर मुँह में डाली और फिर पीछा करने लगा। फत्तू को बचने का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। वह रुका, मुड़ा हाथी से आमना.सामना हुआ। हाथी ने उसे दबाने के लिये अपना पैर उठाया ही था कि अचानक उसने एक दर्दभरी चिंघाड़ भरी और एक ओर लुढ़क गया।

फत्तू की बीवी अपने पीटे जाने का बदला लेना चाहती थी। उसने हलुए में ज़हर मिला दिया था। वही हाथी ने खा लिया था। हाथी जब फत्तू के पास पहुँचा, ज़हर का असर पूरा हो चुका था।

विजयी योद्धा की तरह, फत्तू उछलकर मरे हुए हाथी पर खड़ा हो गया। हर्ष से चिल्लाने लगा : "मैने हाथी को एक धक्का दिया और वह लुढ़ककर ढेर हो गया। मैंने कमाल कर दिया।"

यह सब भीड़ से बहुत दूर घटा था। वह देख नहीं पाई थी कि क्या, कैसे हुआ। लेकिन मरा हाथी उसके सामने था। उससे छुटकारा मिल गया था। लोगों ने फत्तू को कंधे पर उठाया और उसकी जयजयकार करते हुए राजा के दरबार में ले गये। इस डर से कि कहीं ऐसा वीर बहादुर किसी और की सेवा में न चला जाये, राजा ने फत्तू को अपनी सेना में ऊँचा पद दिया, अपने हाथों से उसकी कमर में कटार बाँधी, उसे जागीर दी।

फत्तू ने मन-ही-मन तकुए को धन्यवाद दिया। यह सब उसी की कृपा का फल था।

एक दिन राजा के दरबार में कुछ फ़रियादी आये । एक भयानक शेर ने उत्पात मचा रखा था। मनुष्य का खून उसके मुँह लग गया था। उसके डर से कोई घर से नहीं निकलता था। खेती.बाड़ी, काम.काज सब ठप्प हो गये थे। उन्होंने बिनती की कि फ़ातेह ख़ाँ को भेजकर शेर से उनकी रक्षा की जाये। राजा ने उसे आदेश दिया। चलने से पहले फत्तू ने राजा से वचन लिया कि शेर को मारने पर वह उसे अपना सेनापति बनायेगा और अपनी बेटी का विवाह उसके साथ कर देगा। राजा ने एक सैनिक टुकड़ी भी उसके साथ कर दी।

फत्तू ने अपने को तलवार और ढाल से लैस किया। तकुआ जेब में डाला– वह उसका रक्षकवच था और फ़रियादियों के साथ चल पड़ा। उसकी कमर में राजा की दी हुई कटार लटक रही थी।

फत्तू के मन में जो भी डर हो, उसे ढकने के लिये वह बड़े-बड़े डग

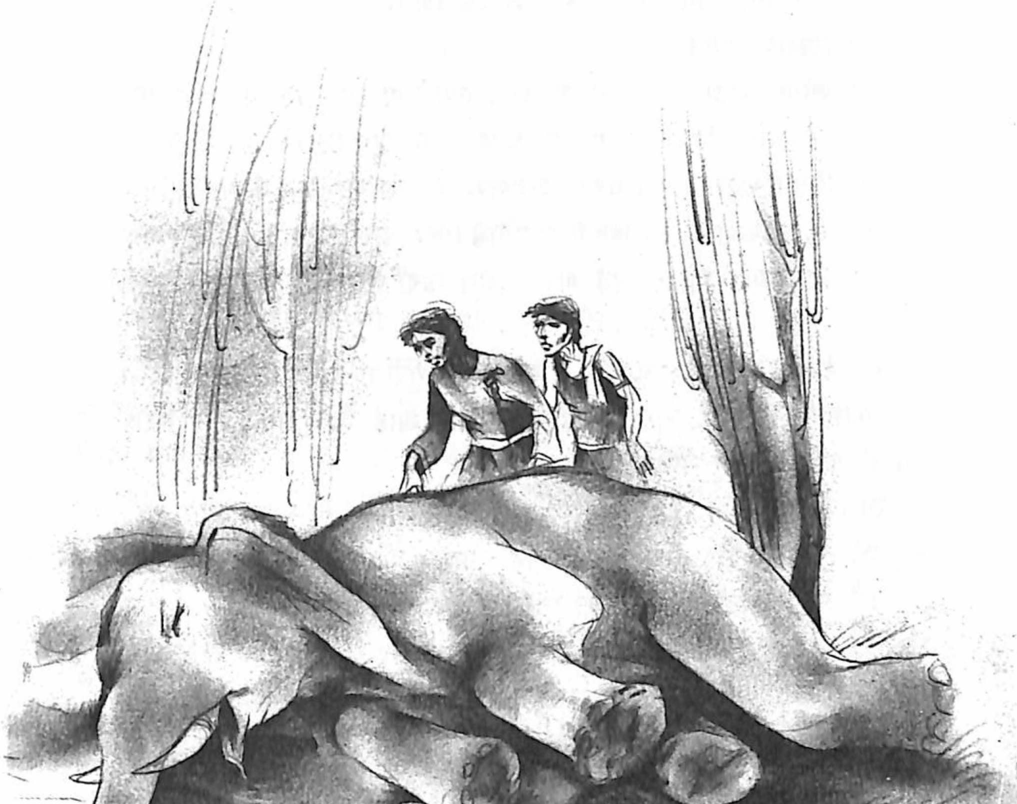

भर रहा था। तमाम फ़रियादियों ने उसे वह स्थान दिखाया जहाँ शेर रहता था और खिसक गये।

शेर सोकर उठा था। भूखा भी था। गुर्रा रहा था। ज्यों ही फत्तू और सैनिक पास आये, वह मानुसगंध से चौंक गया। इधर.उधर देखा। सैनिक दस्ते पर निगाह पड़ते ही वह दहाड़ कर उस ओर लपका। भय के मारे सैनिक भाग खड़े हुए। फत्तू के भी छक्के छूट गये। वह ढाल.तलवार फेंककर एक पेड़ पर चढ़ गया। शेर ने कई बार छलाँग मारी पर फत्तू तक नहीं पहुँच पाया।

वह पेड़ के नीचे बैठ गया और बैठा रहा। गुर्राता, दुम फटकारता, दाँत पैने करता। साँझ आई, सवेरा हुआ। फिर साँझ आई, फिर सवेरा हुआ। शेर वहाँ से हटा न फत्तू नीचे उतरा।

तीन दिन बीत गये। दोनों भूख प्यास से बेहाल थे। दिन चढ़ आया था। फत्तू को लगा कि शेर ऊँघ रहा है। वह चुपचाप पेड़ से उतरने लगा। जैसे ही धरती पर पैर टिका, वहाँ सूखे पत्ते थे, वे खड़क गये। आहट से शेर ने आँखें खोलीं। फत्तू को उतरते देखकर, एक भयंकर दहाड़ के साथ छलाँग मारी। फत्तू कूद कर पेड़ की एक डाल पर लटूम गया। पेड़ के तने पर अगले पंजे टेक, शेर खड़ा हो गया। उसका मुँह खुला हुआ था, जीभ लपलपा रही थी। शिकार इतने पास था।

कूदने में फत्तू का कमरबंद ढीला हो गया था। उसमें बँधी कटार फिसल कर सीधी शेर के खुले मुंह में गिरी और गले की नली में उतर गई। शेर तड़प.तड़पकर मर गया। फत्तू नीचे उतरा। कोंचकर देखा, कहीं शेर में प्राण तो शेष नहीं थे। जब विश्वास हो गया कि शेर ठण्डा हो गया है, उसने अपनी तलवार उठाई और उसे हवा में झुलाते हुए, शेर पर पैर, रखकर पुकारने लगा :

"जहाँ भी छिपे हो, कायरो, निकल आओ। मैंने शेर को मार दिया। आकर देख लो। मैंने कमाल कर दिया।"

सैनिक कंधे पर उठाकर, उसकी जयजयकार करते हुए, फत्तू को राजा के दरबार में ले गये। राजा ने उसे हीरे की मूठवाली तलवार भेंट, की, सेनापति बनाया और बड़ी जागीर दी। बड़ी धूमधाम के साथ उसका राजा की बेटी से विवाह भी हो गया।

पड़ोस के राजा ने जब यह सुना तो वह आग बबूला हो गया। राजकुमारी

बहुत सुंदर थी। उसे वह अपनी रानी बनाना चाहता था। एक बड़ा लशकर लेकर उसने हमला कर दिया। राजा के महल तक पहुँचकर, वहाँ उसने घेरा डाल दिया। उसने चेतावनी दी कि राजकुमारी उसे सौंप दी जाये नहीं तो सारे नगरवासियों को मौत के घाट उतार देगा।

नगरवासी फ़ातेह ख़ाँ की कोठी पर पहुँचे। उसकी दुहाई देने लगे : "रक्षा करो, फ़ातेह ख़ाँ रक्षा करो।" राजा ने भी उसे लालच दिया। शत्रु को हरा दोगे तो आधा राज तुम्हें दे दूँगा।"

फत्तू जो भी हो, बेवकूफ़ नहीं था। वह सोचने लगा :

"मियाँ फ़ातेह ख़ाँ, अब तक जो हुआ वह अल्लाह का करम था। मैंने मच्छर मारा न हाथी न शेर। उनकी मौत आई थी, वे मर गये। सेहरा मेरे बँधा। अब अपनी क़लई खुल जायेगी। यहाँ से रफ़ूचक्कर होने में ही ख़ैर है। मियाँ फ़ातेह ख़ाँ, बहुत हो चुकी, अब गाँव चलो। वहाँ फत्तू ही भले। जान है तो जहान है।"

उसने राजकुमारी से कहा : "मैं अपने घर जाना चाहता हूँ। बहुत याद आ रही है। लंबा सफ़र है। पहुँचने में कुछ दिन लग जायेंगे। वैसे मेरे घर में कोई कमी नहीं है, वहाँ चाँदी-सोने के बरतनों के भण्डार हैं, लेकिन सफ़र में खाने के लिये तश्तरियों की ज़रूरत होगी। अपने पास जितनी चाँदी-सोने की तश्तरियाँ हैं, उन्हें बाँध लो। हम किसी सेवक को साथ नहीं लेंगे।"

आधी रात दोनों अपनी कोठी के चोर दरवाज़े से निकले। अँधेरे में सँभल-सँभलकर पैर रख रहे थे। बड़े-बड़े पत्थर बिखरे पड़े थे। शत्रु के सैनिक गहरी नींद में थे। उनकी छावनी के बीच से रास्ता जाता था।

आधा रास्ता पार कर लिया था। कि एक चमगादड़ उड़ता हुआ आया और फत्तू से टकरा गया। धक्के से वह लड़खड़ाया और गिर पड़ा। हाथ से पोटली छूटी और खुल गई। चाँदी-सोने की तश्तरियाँ खनखनाहट करती बिखर गईं। रात के सन्नाटे में उनका शोर और भी गूँजा। शत्रु के निंदियाये सैनिकों को लगा, उन पर हमला हो गया है। तलवारें बज रही हैं। उनमें भगदड़ मच गई। उनका राजा भी क्या करता ? भागते सैनिकों को देख वह भी उनके साथ हो लिया। फत्तू ने राजकुमारी के साथ शत्रु राजा के शिविर में प्रवेश किया। वह चिल्लाने लगा :

"शत्रु भाग गया। मैंने अकेले जीत पा ली। मैंने कमाल कर दिया।"

फत्तू को आधा राज मिल गया। वह आनन्द से रहने लगा। सब कहते थे :

"फ़ातेह ख़ाँ जैसा सूरमा हुआ न होगा।"

फत्तू का अपना झण्डा था जिस पर उसने तकुए का निशान बनवाया था।

एक दिन राजकुमारी ने पूछा : "अब अपने घर कब चलोगे ?"

फत्तू ने रुखाई से कहा : "मेरा कोई घर नहीं है।"

राजकुमारी को अचम्भा हुआ। "लेकिन उस दिन तो तुमने कहा था।"

"वह तो मेरी चाल थी। न मैं घर चलने की बात कहता न तुम अँधेरी रात में चाँदी-सोने के बरतन लेकर महल से निकलने को तैयार होतीं। तशतरियाँ तो मैने जानबूझकर फेंकी थी ताकि शत्रु सेना में घबराहट हो और भगदड़ मच जाये। वही हुआ भी। यही तो मेरा कमाल है।"

फत्तू जब अकेला होता, आसमान की ओर हाथ उठा कर कहता :

"अल्लाह, तूने एक जुलाहे को राजा बना दिया। यह तेरा कमाल है। तू बड़ा कारसाज़ है।"

7

बुद्धू कौन, सयाना कौन

वह सवेरे से सड़क के किनारे की ज़मीन पर गड्ढा खोदने में लगा हुआ था। कुदाली चलाते-चलाते थक गया था। कुछ देर सुस्ताने बैठा था। तभी राज के एक मंत्री की सवारी उधर से निकली। गड्ढे देखकर वह रुके। उसे बुलाकर पूछा, "ये तूने किये हैं ?"

"जी।"

"बड़ा घामड़ है ......"

"सरकार, मेरा नाम घामड़ नहीं, बुद्धू है।"

"बुद्धू, तुमने ये गड्ढे क्यों खोदे हैं ? इनमे कोई राहगीर गिर गया तो उसकी हड्डी-पसली टूट जायेगी।"

बुद्धू ने सिर नवाकर अरज की : "सरकार, मैने गड्ढे सड़क के बीच में तो नहीं खोदे हैं। जो सड़क पर सीधी राह चलते हैं, वे गड्ढों में नहीं गिरते। ये तो राह से भटकनेवालों को चेताने के लिये हैं।"

उसके उत्तर से मंत्री जी सकपका गये। पूछा : "कहाँ रहते हो ?"

"आसमान की छत के नीचे।"

"अकेले ?"

"अकेले कसे ? पेड़े-पौधे हैं, पशु-पक्षी हैं। सब मेरे संगी-साथी हैं।"

"क्या करते हो ?"

"भगवान में भरोसा।"

"खाते कहाँ से हो?"

"जिसने पेट दिया हैं वह अन्न भी देता है।"

भगवान में बुद्धू की आस्था मंत्री जी के मन को छू गई। पूछा, "काम करोगे ?"

"पंछी के पर कतरना चाहते हैं सरकार?"

"नहीं, कोई बंधन नहीं होगा। न जँचे तो जब चाहो छोड़ देना।"

बुद्धू ने हामी भर ली। मंत्री उसे घर ले गये। वह उनके जानवरों और फुलवारी की देखभाल करने लगा। गाय-भैंस को खेत चराने ले जाता। पेड़ पर चढ़कर उन पर निगाह रखता और बाँसुरी बजाता।

एक दिन वह ऐसे ही बाँसुरी बजा रहा था। दूसरी शाख पर पक्षियों का एक जोड़ा सुरीली तान अलाप रहा था। इतने में एक मादा पक्षी आई और रंग में भंग कर दिया। उसने जोड़े की मादा पक्षी को चोंचे मारकर उड़ा दिया। घायल मादा एक दूसरी शाख पर बैठ गई। नर पक्षी उड़कर उसके पास चला गया। दूसरी मादा ने फिर जोड़े पर झपटने को डैने फैलाये। बुद्धू ने बीच-बचाव करना चाहा। वह पक्षियों की भाषा जानता था। दूसरी मादा से झगड़े का कारण पूछा।

"उस मुंडी ने मेरे नर को रिझा लिया है। मैं उसे मार डालूँगी।"

दूसरी शाख से नर ने इतराते हुए कहा : "मर्द हूँ, जिसे चाहूँगा उसके साथ रहूँगा। तुझे छोड़ा तो नहीं है। ये इनसान नहीं रखते हैं दो-दो बीवियाँ ? दूसरी के साथ तुझे भी रख लूँगा।"

मादा को यह स्वीकार नहीं था। उसकी गरदन फूल गई। वह ज़ोर से पंख फड़फड़ाने लगी।

बुद्धू ने सुझाव दिया, "अपने राजा बड़े बुद्धिमान है। सबकी सुनते हैं। उनका न्याय अचूक होता है। उनके दरबार में जाकर फ़रियाद करो। वह झगड़ा निपटा देंगे।"

नर और दोनों मादा पक्षी उड़कर राजमहल पहुँचे। उस दिन का दरबार उठ गया था। अगले दिन सवेरे ही दरबार भवन पहुँचकर वे एक खम्भे की किगर पर बैठ गये। राजा ने उन्हें देखा। सोचा, कहीं से उड़कर यूँ ही आ गये होंगे।

दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। जब तीसरे दिन भी राजा ने उनकी अनदेखी कर दी तो पक्षी अधीर हो गये। आपस में बतियाने लगे। राजा ने देखा। कहा कुछ नहीं। चौथे दिन वे बेचैनी से चहचहाने लगे। दरबार के काम में विघ्न पड़ने लगा। राजा समझ गया कि पक्षियों की अवश्य कोई समस्या है।

वह उनकी भाषा नहीं जानता था। उसने दरबारियों से पूछा। उनमें भी किसी को नहीं आती थी। उसने मंत्री को आदेश दिया कि अगले दिन तक पता लगाये कि पक्षी क्या चाहते हैं, नहीं तो वह निकम्मा माना जायेगा।

मंत्री, मुख्यमंत्री बनने का सपना देख रहा था। वह दुखी मन घर लौटा।

बिना खाये-पिये अपने बिस्तरे में लेट गया। घरवालों से भी नहीं बोला। उसे चिन्ता खाये जा रही थी कि कल दरबार में उसकी खिल्ली उड़ेगी। उससे पहले वह आत्म-हत्या कर लेगा।

सहसा उसे याद आया कि बुद्धू ने कहा था कि पेड़-पौधे, पशु-पक्षी उसके संगी-साथी हैं। वह अवश्य ही पक्षियों की बोली जानता होगा। उसे बुलाया। जो दरबार में हुआ और राजा की धमकी उसे सुनाई। बुद्धू मुस्कराया। मंत्री को ढाढ़स बँधाया।

"मालिक, आप चिन्ता छोड़ दें। मैं उन पक्षियों के झगड़े का कारण जानता हूँ। मैंने ही उन्हें न्याय के लिये राजा के पास भेजा था।"

"तुमने !"

"हाँ मालिक !"

"लेकिन जब राजा को पक्षियों की भाषा नहीं आती तो वह क्या समझेगा कि वे क्या कहना चाहते हैं।"

"मैं बताता हूँ मालिक।" पक्षियों के झगड़े की कथा सुनाकर बुद्धू ने कहा : "यदि राजा यह निर्णय करता है कि नर पक्षी दोनों मादाओं के साथ रहे तो वह उन्हें तीन उँगलियाँ दिखाये। यदि दूसरी मादा के साथ तो दो उँगलियाँ और पहली के साथ तो एक उँगली। मैं पक्षियों को इन संकेतों का अर्थ समझा दूँगा। वे राजा का निर्णय सुनकर उड़ जायेंगे।"

मंत्री की बाँछें खिल गईं। उसने अपने गले का हार उतारकर बुद्धू को उपहार में दे दिया।

अगले दिन दरबार में ऐसा ही हुआ। राजा ने अपने निर्णय में एक उँगली उठाई। उसे देखते ही पहले दूसरी मादा अकेली और फिर नर और पहली मादा का जोड़ा दरबार भवन से उड़कर चले गये।

सब चकित थे कि मंत्री को पक्षियों की भाषा का ज्ञान कैसे हुआ। वह भी चुप रहा। उसने अपना भेद किसी को नहीं बताया। राजा ने मंत्री को मुख्यमंत्री बना दिया।

अब मंत्री को एक नई चिन्ता सताने लगी। यदि भेद खुल गया और राजा के कान तक यह बात पहुँच गई कि मुझे पक्षियों की बोली नहीं आती, सारा कमाल तो बुद्धू का है, तो वह धोखाधड़ी के लिये मुझे कठोर दण्ड देगा।

उसने सोचा, बाँस को ही क्यों न नष्ट कर दिया जाये ताकि बाँसुरी बज ही न सके।

उसने एक पत्र लिखा और बंद करके बुद्धू को दिया कि स्वयं जल्लाद को दे आये। पत्र में जल्लाद को आदेश था कि पत्र लाने वाले को वह सीधा मौत के घाट उतार दे।

बुद्धू पत्र लेकर चला। मार्ग में उसे मंत्री का पुत्र मिला। उसके हाथ में फूलों की एक डोल्ची थी। वह जल्दी में था। उसने बुद्धू से कहा कि फूल माताजी को दे आ, वह पूजा के लिये बैठी होगी। बुद्धू ने आनाकानी की। कहा, "मंत्रीजी का आदेश है कि पत्र एकदम, स्वयं जल्लाद को पहुँचाना है।" मंत्री पुत्र ने कहा, "तू फूल ले जा, पत्र मुझे दे दे। मैं एक मित्र के पास जा रहा हूँ। जल्लाद का घर रास्ते में पड़ता है मै उसे देता जाऊँगा। पिताजी कुछ कहेंगे तो मै उन्हें समझा दूँगा।"

बुद्धू फूल लेकर घर लौटा। पुत्र पत्र लेकर जल्लाद के घर की ओर मुड़ गया।

पत्र पाते ही जल्लाद ने आदेश का पालन किया।

साँझ पड़े जब मंत्री राजमहल से घर लौटे तो बुद्धू को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। क्रोध से भरकर पूछा : "क्यों रे, तूने पत्र जल्लाद को नहीं पहुँचाया ?"

डरते हुए बुद्धू ने कहा : "मालिक मैं क्या करता ? कँवर साहब मुझसे पत्र लेकर स्वयं जल्लाद के पास चले गये और माताजी के फूल देकर मुझे घर भेज दिया। मेरा क्या दोष है ?"

सुनते ही मंत्री हाहाकार करने लगे, "हाय, यह क्या हो गया !" कोहराम सुनकर मंत्री पत्नी भागी आई। कारण जानकर वह भी सिर पीटकर रुदन करने लगीं। मंत्री के प्रलाप से बुद्धू समझ गया कि किसके लिये कुआँ खोदा गया था और कौन गिरा। जब मंत्री शान्त हुए तो उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया :

"मालिक, जब आप इस बूद्धू से सबसे पहले मिले थे और पूछा था कि मै सड़क के किनारे गड्ढे क्यों खोद रहा हूँ, कोई भी उनमें गिर सकता है, तो आपको याद होगा मैंने क्या कहा था। मालिक, मैंने कहा था, जो सड़क पर सीधी राह चलते हैं, वे किनारे के गड्ढों में नहीं गिरते। ये तो राह से भटकनेवालों के लिये हैं। आप बुद्धिमान होते हुए भी सीधी राह से भटक गये और गड्ढे में गिर गये। इसमें मेरी क्या ग़लती है ? आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं जा रहा हूँ।"

8

एक था सूरज, एक था चाँद

दो भाई थे। बड़े का नाम था सूरज, छोटे का चाँद। वे अनाथ थे और निर्धन। थोड़ी-सी ज़मीन थी। वह भी पथरीली। उस पर कुछ नहीं उगता था। वे भीख नहीं माँगते थे। किसी तरह, कंदमूल से पेट की आग शान्त कर लेते थे। दोनों में सूरज भोला था, चाँद तुर।

उस दिन कदंमूल खोदते देर हो गई। दिन ढलने लगा था। घर दूर था। मार्ग जंगल से निकलता था। उसमें भैंसें, शेर, भालू का वासा था। उन्हें लगा, रात किसी पेड़ पर काटनी होगी। पर भूख सता रही थी। पहले उसका जुगाड़ करना था। सूरज ने चाँद से कहा, वह सबसे ऊँचे पेड़ पर चढ़कर देखे, पास में कोई बस्ती हो। चाँद को झुटपुटे में एक झोंपड़ी दीखी। सूरज ने जानना चाहा, क्या उसमें से धुआँ निकल रहा है। आग होगी तो उसमें सूखे कंद भून लेंगे।

"धुआँ तो नहीं है दादा, झोंपड़ी से कुछ आगे, एक पेड़ के नीचे कोई चीज़ चमक रही है। हो सकता है कोई खाना पका रहा हो।"

दोनों भाइयों ने प्रकाश की दिशा में पाँव बढ़ा दिये। पेड़ के पास एक गुफ़ा थी। उसके पास पहुँचते ही दो अंगारे दिखाई दिये। वे एक शेर की आँखें थीं। शेर गुफ़ा के प्रवेश द्वार पर बैठा था।

चाँद ने सूरज की पीठ पर हाथ रखा। थपथपाया। हिम्मत बँधाई। फिर बोला : "शेर काका, हम आपको आदर देने आये हैं।"

"क्यों नहीं भतीजे, क्यों नहीं। आओ, बैठो। पास बैठो। मैंने एक मोटा भैंसा मारा है। उसे ही खा रहा था।"

"काका, हमने ये जड़ें खोदी हैं। इन्हें पकाने के लिये आग ढूँढ़ रहे हैं। कहीं मिल जाये तो पेट भर लें।"

"उस झोंपड़ी में जाकर देखो। वहाँ शायद मिल जाये। झोंपड़ी खाली है। एक बूढ़ा किसान रहता था। कल मैंने उसे खा लिया।"

दोनों भाइयों को झुरझुरी लगी। चाँद उठा, झोंपड़ी से एक अधबुझा कंडा लाया। सूखी पत्तियों का ढेर जमाया। फूँक मारकर आग चेताई। कंदमूल भूने। शेर भी उनके पास आकर बैठ गया था। चाँद ने एक अधपकी, भभकती जड़ शेर की ओर बढ़ा दी।

"काका, आप भी खाओ।"

मुँह में डालते ही शेर गुर्राया। "लड़के, तूने मेरा मुँह जला दिया। खुद ठण्डी करके चैन से खा रहा है।"

भाई को बचाने के लिये सूरज बोला : "काका, हम लोग गरम भोजन अपने बड़ों को परसते हैं। अपना काम ठण्डे से ही चला लेते हैं।"

खाना हो चुका था। आग ठण्डी पड़ने लगी थी। दोनों भाई उनींदे हो रहे थे। शेर की आँखें उन पर टिकी थीं। उसने पूछा : "एक पहेली बुझाओगे ?"

"कहिये काका।"

"एक से कलेवा होगा, दूसरे से ब्यालू। इसका क्या मतलब हुआ?"

अर्थ तो दोनों भाई समझ गये। अगले सवेरे और शाम शेर उन्हें अपना निवाला बनायेगा। चाँद उसकी अनसुनी करके बोला :

"काका, एक पहेली हम भी बूझ लें। फिर एक साथ अपने अपने अर्थ बतायेंगे।"

"ठीक है, तुम्हारी बात मानी।"

"काका, एक दुम मरोड़ेगा और दूसरा कान उमेठेगा। बताओ कौन, किसका ?"

शेर भी समझ गया। ये तो सवा सेर निकले। इधर-उधर झाँकने लगा।

दोनों भाई अधमुँदी आँखों से उसे देख रहे थे। शेर ने बचने की सोची। वह उठा ही था कि दोनों भाइयों ने उसकी दुम पकड़ ली। खींचातानी में वह उनके हाथ में रह गई। शेर भाग गया। उसने दूर से सुना, चाँद ऊँची आवाज़ में कह रहा था :

"अगर शेर नदी की तरफ़ गया तो हम पीछा नहीं करेंगे। जंगल में घुसा तो खोज निकालेंगे।"

उसने जान-बूझकर उलटी बात कही थी। शेर झाँसे में आ गया। बचने के चक्कर में वह नदी की ओर दौड़ गया। भाइयों ने फिर आग चेताई।

शेर की दुम भूनी, बड़े स्वाद से खाई और सुख की नींद सो गये।

दूसरे दिन सवेरे, शेर के पंजों की टोह लेते, उसकी खोज में निकले। दोनों ने अपने को पेड़ के मोटे डंडों से लैस कर लिया था। नदी के किनारे शेर निढाल पड़ा था। उसकी दुम से खून चू रहा था। वे दबे पैर, पीछे से उसके पास पहुँचे और पहले मुँह, फिर सारे शरीर पर डंडे बरसाने लगे। शेर वहीं चित हो गया। अपनी-अपनी पगड़ी खोल, उसके पैर एक मोटे, मज़बूत डंडे से बाँधे और कंधे पर लादकर, डंडाडोली बनाकर घर ले चले।

शेर भारी था। वे थोड़ा चलते, उसे कंधे से उतारते, सुस्ताते, फिर लाद लेते। चाँद को लगा, शेर मरा नहीं है। मट्ठ बना हुआ है। उसने शेर को आँखें मिचकाते देख लिया था। भाई से कुछ फुसफुसाया, शेर को कंधे से उतारा, डंडों से धुना, फिर लाद लिया। शेर अब भी नहीं मरा था। वह चोरी छिपे आँखें खोलता और इधर-उधर झाँक कर बंद कर लेता।

सूरज सिर पर चढ़ आया था। गर्मी सताने लगी थी। शेर बोझ बन गया था। वे उसे और लादना नहीं चाहते थे।

कंधे से उतारकर, कस कर और डंडे जमाये और लहूलुहान कर वहीं छोड़ गये। नदी में हाथ-मुँह धोये, प्यास बुझाई और आराम करने किनारे के पेड़ पर चढ़ गये।

शेर कराह रहा था। बड़ी मार पड़ी थी। पसली दुख रही थी। किसी तरह घिसटता हुआ जंगल में घुसा। उसकी कराह सुनकर दूसरे शेर जमा हो गये। दुमकटे ने अपना दुखड़ा सुनाया। पहले तो वह उस पर बिगड़े, शर्म नहीं आती—दो पैरवालों से मार खा गया, फिर उसकी बिनती पर बदला लेने को तैयार हो गये। सारा जंगल छान मारा। दोनों भाई नहीं मिले। नदी के किनारे पहुँचे। दुमकटा पानी पीने झुका कि पेड़ पर बैठे भाइयों की परछाईं पानी में दीखी। प्रसन्न होकर वह अपने साथियों से बोला :

"चलो अच्छा हुआ, वे नदी में डूब गये। देखो, पानी में दीख रहे हैं।"

एक शेर बोला : " जा, उन्हें निकाल ला। सब मिलकर खायेंगे। बहुत भूख लगी है।"

दुमकटा पानी में उतरा। इधर-उधर छपछपाया। डुबकी लगाई। लड़के हाथ नहीं लगे। थक-हारकर बाहर निकला। तब तक पानी ठहर गया था। उनकी परछाईं फिर दिख रही थी। फिर पानी में उतरा, छपछपाया, डुबकी

लगाई। सब बेकार। वह समझ नहीं पा रहा था कि लड़के उसे कैसे छका रहे हैं।

उस तमाशे पर चाँद को हँसी आ गई। शेरों ने ऊपर देखा। दोनों भाई पेड़ की डाल पर बैठे थे। वे पेड़ के चारों ओर जमा हो गये। दुमकटे को एक तरकीब सूझी। क्यों न शेर एक दूसरे पर चढ़कर पेड़ की डाल तक पहुँच जायें और भाइयों को नीचे घसीट लें। तरकीब सबको पसन्द आई। दुमकटा सबसे नीचे खड़ा हुआ। बाक़ी शेर एक के ऊपर एक चढ़ने लगे। एक खम्बा-सा बन गया। जैसे ही एक शेर डाल तक पहुँचा, चाँद चिल्लाया :

"दादा, अपनी कुल्हाड़ी देना। मैं दुमकटे के फेंककर मारता हूँ।"

दुमकटा घबरा गया। अपनी जान बचाने के लिये उसने भागने की ठानी। उसके हिलते ही शेरों का वह खम्बा धड़ाम से उसके ऊपर गिरा। दुमकटा कुचल कर वहीं ढेर हो गया। दूसरे शेर जंगल में भाग गये।

दोनों भाई पेड़ से उतरे। चाँद ने सूरज के हाथ में कुल्हाड़ी थमाते हुए कहा : "दादा, आपको जो अंग स्वादिष्ट लगे, वह काट लो।"

"तू क्या लेगा ?"

"अँतड़ियाँ।"

"और कुछ नहीं ?"

"नहीं।"

"कलेजी भी नहीं ?"

"नहीं।"

"क्यों ?

"बस, ऐसे ही। मन नहीं है।"

"बड़ा मूर्ख है।"

"सो तो हूँ। आप बड़े हैं, बुद्धिमान हैं। और होना भी चाहिये। बड़े जा हैं।"

वे वहाँ से रवाना हुए। अपना गाँव दूर था। वहाँ था भी कौन, और क्या ? वे नहीं जानते थे, कहाँ जायें। बस, चल रहे थे। जब थक गये तो एक घने आम के पेड़ पर चढ़ गये। शेरों का डर था। थोड़ी देर में झपकी आ गई।

पेड़ के नीचे हलचल से उनकी आँखें खुलीं। एक पालकी खड़ी थी। उसके पास, बिछौने पर एक सुंदर नौजवान लेटा था। कुछ हटकर कहार खड़े थे, कुछ सिपाही भी। वे बतिया रहे थे। भाइयों ने कान लगाये। राजकुमार

ससुराल जा रहा था, अपनी बहू को लाने।

सूरज को लगा, छोटा भाई कुछ कष्ट में है। पूछा, "क्या बात है ?"

"दादा, ये अतंड़ियाँ बहुत भारी हैं ! मुझसे सँभल नहीं रही हैं। हाथ से फिसले जा रही हैं।"

"रोके रख चाँद। गिर गईं तो ये लोग चोर समझकर हमें पकड़ लेंगे, मारेंगे।"

किन्तु अँतड़ियाँ चाँद के हाथ से छूट गईं। सीधी सोते हुए राजकुमार पर गिरीं। वह हड़बड़ाकर उठा। अपने ऊपर और अगल-अगल में, अँतड़ियों से रिसता हुआ खून देखकर डरा और भागा। उसके पीछे उसके अनुचर भागे। सब माल-असबाब वहीं छोड़ गये।

भाइयों की समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या लें और क्या छोड़ें ? इतना सब लादकर कैसे, कहाँ ले जायेंगे। सूरज ने अपने लिये रेशमी वस्त्र चुने और चाँद ने केवल एक ढोल।

"इतना माल छोड़कर तुझे यह ढोल पसन्द आया है ?"

"हाँ दादा। आपने कहा था न, मैं मूर्ख हूँ। क्या करूँ, हूँ तो हूँ।"

वे आगे बढ़े। चाँद मगन होकर ढोल पीटता चल रहा था। मस्ती में उसने ऐसी ज़ोर से थाप मारी कि ढोल की एक तरफ़ की पुड़ी तड़क गई।

सूरज हँसा : "ले, तेरे ढोल का भी दम निकल गया। अब इसे क्या लादेगा? फेंक दे।"

चाँद नहीं माना। "दादा, यह बड़े काम का है। आप देखते जाओ।"

एक पेड़ पर शहद का छत्ता लटक रहा था। चाँद ने होशियारी से मक्खियों को उड़ाकर उन्हें ढोल में बंद कर लिया। छत्ता निचोड़ कर जी भर शहद पिया और सूरज को पिलाया। दोनों ताज़े हो गये। चाँद गुनगुनाने लगा। उसका कण्ठ बड़ा मीठा था। उसे सुनकर मक्खियाँ ढोल में भिनभिनाने लगीं। कुछ पुड़ी के छेद से निकलकर उसके मुँह पर बैठ गईं। लेकिन काटा नहीं।

दोनों भाई नदी के घाट पर पानी पीने रुके। वहाँ कुछ गाँव के लोग आये। सूरज के पास रेशमी वस्त्र देख कर उनका मन ललचाया। उसे लूटना चाहा। चाँद ने ढोल से कुछ शहद की मक्खियाँ छोड़ दीं। उनके डंक मारते ही गाँववाले रोते-चिल्लाते मुखिया के पास पहुँचे। उससे सहायता की गुहार की। वह तीर चलानेवालों की एक टुकड़ी लेकर वहाँ पहुँचा। सूरज और चाँद घाट के एक पत्थर के पीछे छिप गये। जब उनके तीर चुक गये। चाँद ने

आगे बढ़कर पुड़ी का छेद चौड़ा किया और मक्खियों को उड़ा दिया। मक्खियाँ सब पर छा गईं। वे रोने, गिड़गिड़ाने लगे।

"हमसे भूल हुई। हम तुम्हारे हाथ जोड़ते हैं। पाँव पड़ते हैं, हमें माफ़ कर दो।"

मुखिया बोला : "हमारी जान बख़्शो। मेरी एक बेटी है। बहुत सुंदर है। उसे मैं तुम्हें ब्याह दूँगा।"

चाँद ने गीत गाकर मक्खियों को शान्त किया। मुखिया ने अपना वचन पूरा किया। सूरज का विवाह हो गया। मुखिया ने उसे खेती करने को हल, बैलों की जोड़ी और उपजाऊ ज़मीन दी। वे वहीं रहने लगे। अच्छा, खाते अच्छा पहनते। आनन्द ही आनन्द था।

बैलों का चारा ख़त्म हो रहा था। सूरज को पास के गाँव जाना था। उसने चाँद को बुलाकर आदेश दिया : "मैं बाहर जा रहा हूँ। तुम जोड़ी निकालकर खेत जोत लेना। कहीं हल अटक जाये तो यह कुल्हाड़ी लो, ज़ोर से मारना, ठीक हो जायेगा।"

चाँद अपनी किसी धुन में था। भाई की बात पूरी सुनी न समझी। हुंकारा भर दिया। खेत में जैसे ही हल अटका, उसने कुल्हाड़ी बैल के दे मारी। उसने वहीं दम तोड़ दिया। चाँद घबराया, यह क्या हो गया। दादा मारेगा। वह एक कोने में छिप गया। सूरज के आते ही भाभी ने शिकायत की। क्रोध में सूरज आपे से बाहर हो गया।

"कहाँ है यह चाँद ? मैं उसकी जान ले लूँगा।"

चाँद ने सुन लिया। खून से भरे बैल की अँतड़ियाँ खींचीं और उनकी पोटली बनाकर जंगल की ओर भागा। सूरज हाथ में भाला उठाये उसका पीछा कर रहा था। चाँद एक पेड़ के कोटर में घुस गया। अंतड़ियों की पोटली से उसका मुहाना ढक दिया। सूरज ने देख लिया था। उसने भाले से वार किया, एक बार, दो बार, अनेक बार।

कोटर से रक्त चूने लगा। सूरज ने सोचा, चाँद का काम तमाम हो गया।

"मर गया। मैंने अपने बैल का बदला ले लिया।"

जब वह अपने भाले के नेज़े से खून पोंछ रहा था, सूरज को पछतावा होने लगा।

"यह मैंने क्या किया ? अपने छोटे भाई की हत्या कर दी। उसने कैसा मेरा साथ निभाया था। मै प्रायश्चित्त करूँगा। पितरों की पूजा करूँगा। भेंट चढ़ाऊँगा।"

चाँद मरा नहीं था। रक्त बैल की अँतड़ियों का था। वह चुपके-चुपके घर आया। भाई के कमरे में छत के नीचे शहतीर पर चढ़, छिपकर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद सूरज आया। उसके हाथ में थाल था, जिसमें मरे हुए बैल का माँस और चावल थे। धूप.दीप जलाकर, वह पूजा करने लगा :

"मेरे पूज्य पितरो, मैंने पाप किया है। अपने भाई की हत्या की है। मैं क्रोध में पागल हो गया था। मुझे दुख है। यह भेंट स्वीकार करो और मुझे क्षमा करो,"

वह रोने लगा।

शहतीर पर छिपा चाँद बोला : "तुम्हारी भेंट स्वीकार की। जाओ, तुम्हें क्षमा किया।"

चाँद की आवाज़ सुन कर सूरज चकराया। वह तो मर चुका है। क्या यह उसका भूत है, वह भागा-भागा गाँव के बूढ़ों के पास गया। उनसे पूछा, "क्या मरा हुआ व्यक्ति फिर जी उठ सकता है ?"

उन्होंने उत्तर दिया : "ऐसा हो भीं सकता है।"

सूरज घर लौटा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अगर चाँद जीवित है तो उसे मुँह कैसे दिखायेगा। कमरे में प्रवेश किया तो वहाँ थाल, मांस-चावल कुछ भी नहीं थे। पत्नी को पुकारा। उसने उठाये थे न आते हुए किसी को देखा था। पहेली उलझती जा रही थी। सूरज को पसीना छूटने लगा था।

सूरज के कमरे से जाते ही चाँद शहतीर से उतरा था और एक कपड़े में थाल, मांस, चावल बाँधकर पिछले द्वार से निकल गया था। जंगल में पहुँचकर एक पेड़ के नीचे आराम करने लेटा ही था कि चोरों ने उसे घेर लिया। जो कुछ उसके पास था, उसने चोरों को थमा दिया। वे प्रसन्न हुए। उसके मित्र बन गये। अपने दल में भरती कर लिया। लूटपाट का हिस्सा बाँटने का काम उसे सौंपा गया।

कुछ दिन में मुखिया को उस पर संदेह होने लगा। बँटवारे में अपने लिये वह हिस्से से अधिक रख लेता है। यह था भी सही। एक दिन पकड़ा गया। चोर उसे मार-पीटकर नदी के किनारे पटक गये। कह गये, शाम को आकर डुबो देंगे।

एक चरवाहा अपनी गाय-भैंसों को पानी पिलाने उधर आया। चाँद को उस हालत में देखकर पूछा : "वह कौन है, उसे क्या हुआ है?"

चाँद की चतुराई कभी उसका साथ नहीं छोड़ती थी। कहने लगा : "मैं एक ठाकुर का बेटा हूँ। घरवाले पड़ोस के ठिकाने की राजकुमारी से मेरा विवाह करना चाहते हैं। मेरी मर्ज़ी नहीं है। बारातवाले दाना-पानी के लिये गये हैं। बाँधकर छोड़ गये हैं, भाग न जाऊँ। आते ही होंगे।"

भोला चरवाहा चाँद के जाल में फँस गया। बोला : "तुम नहीं चाहते तो राजकुमारी से मेरी शादी करवा दो। मैं भी राजपूत हूँ।"

"खुशी से। मेरे बंधन खोल दो। मेरे कपड़े तुम पहन लो। अपनी जगह मैं तुम्हें बाँधकर छोड़ जाता हूँ। मैं तुम्हारी गाय-भैंसों की रखवाली कर दूँगा। शादी से आकर ले लेना।"

चरवाहा मान गया। चाँद उसे बाँधकर वहीं छोड़ गया। ढोरों को हाँक. कर ले गया। शाम को चोर आये। उन्होंने चरवाहे को चाँद समझ नदी में फेंक दिया।

अगले दिन, उसी स्थान पर, चाँद चोरों को फिर मिल गया। उन्हें आश्चर्य हुआ। पूछा : " हम तो तुझे नदी में डुबा गये थे। तुझे किसने बचाया ?"

बड़े शान्त भाव से वह बोला : "नदी की रानी ने।"

"नदी की रानी ने ? वह कैसे ?"

"जब डूबता-डूबता मैं नदी की तह तक पहुँचा, रानी के सेवक मुझे पकड़-कर उसके दरबार में ले गये। मेरी दुखभरी कथा सुनकर वह पसीज गई। सेवकों को आदेश दिया कि मुझे वापिस नदी के तट पर छोड़ आयें।"

"और ये गाय-भैंसें कहाँ से आईं ?"

"ये भी नदी की रानी ने दी हैं। कहने लगी, लड़के तेरा कोई ठौर-ठिकाना नहीं है। पेट पालने के लिये इन्हें ले जा। वह तो और भी दे रही थी।"

"तू सच बोल रहा है ?"

"आप से झूठ बोलूँगा तो आप मुझे मार नहीं डालेंगे ?"

"हम नदी की रानी के पास जायें तो हमारे साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेगी ?"

"क्यों नहीं ? वह बड़ी दयालु है। अवश्य ऐसा ही करेगी।"

"तो तुम हमें भी रस्सी से बाँधकर नदी में डुबा दो।"

"जैसा आप कहते हैं। हाँ, वह पूछें तो मेरा नाम ले लीजियेगा। कहना, चाँद ने आप लोगों को उनके पास भेजा है वह मुझसे बहुत प्रसन्न है।"

सबने अपने बाँधने के लिये रस्सी चाँद को दी। उसने कस के बाँधकर,

एक-एक करके उन्हें पानी में डुबो दिया।

उसे बड़े भाई सूरज की याद सता रही थी। वह गाय-भैंसें लेकर भाई के पास आया।

दोनों के दिन फिर गये थे। चाँद का विवाह पड़ोस के ठिकाने की कन्या से हो गया। सब हिल-मिलकर रहने लगे।

9

एक-से-बढ़कर एक

यह कथा दो दुष्टों की है लेकिन उन्हें भी कोई नहले पर दहला मिला जिससे वे मात खा गये।

वे दक्षिण के दो नगरों में रहते थे। एक तंजावूर में, दूसरा तिरुचिरापल्ली में। नाम उनका मालूम नहीं, इसीलिये उसे नगर के साथ जोड़ दिया है।

तंजावूर का दुष्ट बरसों से अपने धंधे में लगा हुआ था। जेब काटने, ठगने और लगाई-बुझाई करने में वह बेजोड़ था। अब लोग उसे पहचानने लगे थे। उससे कन्नी काटने लगे थे। जो मिलता, उससे मुँह फेर लेता था। उसे देखते ही घरों के कपाट बंद हो जाते थे। इसका असर उसके धंधे पर पड़ने लगा था। उसमें मंदी आ गई थी।

उसने सोचा धंधा बिलकुल ठप्प हो जाये उससे पहले नगर छोड़ देना चाहिये। दूर, कहीं ऐसे ठिकाने चलना चाहिये जहाँ वह अजनबी हो।

दुष्ट ने अपनी घर वाली से बात की। उसे भरोसा दिलाया कि जब वह खूब धन कमा लेगा तो यह धंधा छोड़ देगा। वे सुख-चैन से जीवन बितायेंगे। घर वाली की भी यही राय बनी। तय हुआ कि अगले सवेरे वह निकल जायेगा। बीवी उसके साथ कुछ खाने को रख देगी।

बीवी बड़े तड़के उठी। चावल उबाले। बाहर से गीली मिट्टी लाई। उसका गोल लोंदा बनाया। उसकी तह पर उबले चावलों की परत जमा दी। मिट्टी इतनी ढक गई कि बिल्कुल नहीं दिखती थी। ऐसा लगता था कि सारा-का-सारा चावलों का पिण्ड है।

दुष्ट अचरज में भर गया। पूछा : "यह तू मेरे साथ क्या छल कर रही है ?"

वह मुस्कराई। "तुम्हारी बीवी हूँ, मूर्ख नहीं। मैंने भी तुम्हारे गुण सीख

लिये हैं। साथ रहकर रंग तो चढ़ना ही था। अभी नहीं बताऊँगी। जब समय आयेगा अपने आप जान जाओगे कि मैंने यह क्यों किया है।"

दुष्ट चुप हो गया। चावल के पिण्ड को झोले में डाला और बीवी से विदा ली।

जो तंजावूर के दुष्ट के साथ हुआ वही तिरुचिरापल्ली के दुष्ट के साथ हो रहा था।

उसे भी लोग पहचानने लगे थे और उसके धंधे में भी मंदी आ गई थी। उसने भी दूर, कहीं ऐसे ठिकाने जाने का निश्चय किया जहाँ वह अनजाना हो। उसकी बीवी ने एक पीतल के बरतन में तीन-चौथाई रेत भर कर, ऊपर सूखे, अनपके चावल की एक परत जमा दी। रेत ढक गई। उसके प्रश्न का बीवी ने वही उत्तर दिया जो तंजावूर के दुष्ट की बीवी ने दिया था। वह भी चुपचाप बरतन पर ढक्कन लगा, झोले में डालकर, घर से निकल गया।

दोनों घटनाएँ एक ही दिन घटीं।

ऐसा संयोग हुआ कि दोनों दुष्टों ने एक ही पेड़ के नीचे पड़ाव डाला। राम-श्याम हुई। एक दूसरे का नाम और नगर जाना। धंधे का भेद किसी ने नहीं दिया। हाँ, दोनों की आँखें एक दूसरे के झोले पर लगी थीं। उनमें क्या था, यह आँखों ने तलाश लिया था।

पास में एक बावड़ी थी। दोनों उसमें नहाकर आये। पूजा करने का दिखावा किया। तंजावूर के दुष्ट ने झोले से उबले चावलों का पिण्ड निकाला। बोला : "मेरी बीवी ने ये ठण्डे उबले चावल मेरे साथ बाँध दिये हैं। मैं इन्हें खा नहीं सकता। स्वास्थ्य ठीक नहीं है और इतनी लम्बी यात्रा सामने है। कोई साथ भी नहीं है। पास में कहीं छोटी-मोटी बस्ती होती तो वहाँ से कच्चे चावल लाकर बरतन में पका लेता।"

तिरुचिरापल्ली का दुष्ट इसी अवसर की ताक में था। अपनापन जताते हुए बोला : "आप चिन्ता न करें। मेरे पास अनपके चावल हैं। आप उन्हें ले लें। मैं पके ठण्डे चावल खा लूँगा। मुझे सब पच जाता है। यात्रा में जो एक दूसरे का कष्ट न बाँटे वह दो कौड़ी का आदमी होता है।"

दोनों एक दूसरे को उल्लू बना रहे थे और खुश थे।

तंजावूर के दुष्ट ने उबाले हुए चावल का पिण्ड तिरुचिरापल्ली के दुष्ट को दिया और उससे अनपके चावल का बरतन लेकर, पकाने से पहले, बावड़ी के पानी में धोने चला गया। उसके जाते ही तिरुचिरापल्ली के दुष्ट ने उबले

हुए चावल के पिण्ड में मुँह मारा। भात की ऊपरी परत के बाद दाँत मिट्टी के लोंदे से टकराये। उसके मुँह से निकला : "मक्कार कहीं का, बिल्ली से ही म्याऊँ करता है !"

उधर तंजावूर के दुष्ट ने जैसे ही चावल बावड़ी के जल में डाले, बरतन की मिट्टी बह गईं। चौथाई मुट्ठी भी चावल नहीं बचे। उसके मुँह से भी वे ही शब्द निकले : "मक्कार कहीं का, बिल्ली से ही म्याऊँ करता है !"

दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे।

जब आमना-सामना हुआ तो एक दुष्ट बोला : "क्या, हम ही चाल चलने को रह गये थे ?"

दूसरे ने भी यही कहा, पर वे लड़े नहीं। तय किया, जब दोनों एक ही बिरादरी के हैं तो मिलकर क्यों न काम करें। एक से एक मिलकर ग्यारह हो जायेंगे। उन्होंने एक दूसरे को वचन दिया कि कभी आपस में धोखा नहीं देंगे। एक दूसरे के प्रति सच्चे रहेंगे।

दोनों के पेट भूख से कुलबुला रहे थे लेकिन वे थकान से चूर थे। चादर तानकर सो गये। जब आँख खुली तो सूरज काफ़ी नीचे उतर आया था। वे हड़बड़ाकर उठे, कंधों पर झोले डाले और चल दिये।

साँझ उतरते तक, दूर बियाबान में उन्हें एक कुटिया दीखी। उसमें एक दीपक टिमटिमा रहा था। अवश्य कोई रहता होगा। वहाँ पहुँचे। गुहार लगाई। एक औरत बाहर आई। बूढ़ी लगती थी। बाल सन जैसे थे पर चेहरे पर झुर्रियाँ नहीं थीं। शरीर तना हुआ था। बोली में कड़क थी। उसने पूछा :

"कौन हो ? क्या चाहते हो ?"

दुष्ट बड़े दीन बनकर बोले : "माई, यात्री हैं। बड़ी दूर से आ रहे हैं। थक गये हैं। भूखे-प्यासे हैं। बस्ती पता नहीं कितनी दूर है। रात को पैर फैलाने का स्थान और कुछ पेट में डालने को मिल जाये तो बड़ा पुण्य होगा।"

बुढ़िया ने उन्हें ऊपर से नीचे तक देखा। कुछ सोचा और अन्दर बुला लिया। कुटिया साफ़-सुथरी थी। जगह की कमी भी नहीं थी। दुष्टों ने भाँप लिया कि बुढ़िया खुक्खल नहीं है। मालमत्ता अवश्य कहीं छिपाकर रखा होगा।

बुढ़िया रसोई में चली गई। दुष्ट नहा-धोकर आसन पर बैठे। बुढ़िया ने भोजन परसा। वे खाने लगे तो बात चलाई : "आप दोनों कहाँ जा रहे हैं ?"

एक दुष्ट ने उत्तर दिया : "धंधे की तलाश में।"

"क्या धंधा करते हो ?"

अब दूसरे के बोलने की बारी थी : "जो मिल जाये।"

"घरबार है ?"

"हाँ। पीछे छोड़ आये हैं। कुछ कमाकर लौटेंगे।"

"खेती-बाड़ी में हाथ बँटाओगे?"

"किसकी खेती-बाड़ी है ?"

"मेरी अपनी है।"

दोनों दुष्टों ने आपस में आँखें मिचकाईं। "हाँ हाँ, क्यों नहीं ? क्या करना होगा ?"

"ज़्यादा कुछ नहीं है। बारी-बारी से एक खेत में पानी देगा। दो-चार क्यारियाँ ही तो हैं। दूसरा ढोर चराने ले जायेगा।"

"कुआँ है ?"

"हाँ, अपना है। पास ही में।"

"ढोर कितने हैं ?"

"एक ही गाय है। चराने की जगह भी दूर नहीं है।"

"क्या मिलेगा?"

"रहने को ठौर, पेट भरने का भोजन और हर सप्ताह पगार। यह जान लेना, बुढ़िया कंजूस नहीं है।"

दुष्टों ने सोचा, नया धंधा यहीं से क्यों न शुरू किया जाये। एक साथ बोले, "माई तुम कितनी दयावान हो ! हम राज़ी हैं।"

अगले तड़के तंजावूर का दुष्ट, गुड़-धानी का कलेवा कर, चराने ले जाने के लिये गाय खोलने गया। बड़े सींगोंवाली श्यामा गाय थी। जब वह चलने लगा तो बुढ़िया ने कहा : "चरागाह के पास फलों के पेड़ हैं। कोई रखवाला नहीं है। भूख लगे तो तोड़कर खा लेना। शाम को गरम दाल-रोटी तैयार रखूँगी।"

दुष्ट प्रसन्न था। गाय को चरने छोड़कर किसी घने पेड़ के तले लम्बी तानेगा। चैन से दिन बीतेगा। गाय भोली लगती थी। चुपचाप सीधी डगर पर चल रही थी। चरागाह पहुँचकर उसने रस्सी खोल दी। गाय घास चरने लगी। वह लेटने के लिये ठिकाना ढूँढ़ने लगा।

सहसा, न जाने क्या हुआ, गाय चमक गई। वह ज़ोर से रंभाई और जंगल की ओर भागी। दुष्ट उसके पीछे दौड़ा। गाय जंगल में खो गई या किसी शेर बघेरे ने दाब लिया तो बुढ़िया माफ़ नहीं करेगी। कुटिया से निकाल देगी।

दुष्ट ने गाय को जंगल में घुसने से तो रोक लिया, अब वह पोखर के चक्कर लगाने लगी। दौड़ती और सुस्ताती। जब वह सुस्ताती, दुष्ट दबे पैर उसके पास पहुँचता। रस्सी उसकी पकड़ में आये उससे पहले गाय को आहट हो जाती। वह फिर दौड़ने लगती।

सारा दिन यही होता रहा। दुष्ट हारकर बैठ गया। उसकी आँखें गाय पर जमी थीं। गाय भी थक गई थी। वह भी कुछ दूर बैठ गई। दुष्ट को झपकी आ गई। जब आँख खुली तो झुटपुटा होने लगा था। गाय अपनी जगह ज्यों की त्यों बैठी थी। वह उसके पास गया। वह भागी न दौड़ी। दुष्ट ने रस्सी थामी और गाय को उठाया। गाय कुटिया की ओर चलने लगी। वैसी ही भोली बनी जैसी आई थी। मानो दिन में कुछ नहीं हुआ था। दुष्ट उसे कोसता पीछे चल रहा था।

उसने निश्चय किया कि उसके साथ जो बीती वह दूसरे दुष्ट को नहीं बतायेगा। उल्टे, गाय के गुण गायेगा कि कैसी भोली है, ज़रा भी कष्ट नहीं दिया।

उधर तिरुचरापल्ली के दुष्ट ने सोचा था, उसे दो-चार क्यारियों में ही तो पानी देना है, आसानी से कर लेगा। देर तक अलसाया लेटा रहा। बुढ़िया ने भी नहीं टोका। जब वह हाथ-मुँह धोकर आया, उसके सामने भी गुड़धानी का कलेवा रख दिया।

जब वह ढोल उठाकर कुएँ की ओर चलने लगा तो बुढ़िया ने सचेत किया, "देखना पानी क्यारियों में नकानक भर जाये। कम न रहे।"

"माई चिन्ता न करो। ऐसा ही होगा।"

दुष्ट पानी खींचकर क्यारियों में डालने लगा। डालता गया, डालता गया। उसकी हथेलियाँ छिल गईं, कंधे जुड़ गये, लेकिन क्यारियाँ न भरनी थी न भरीं।

बुढ़िया कुटिया में किवाड़ की ओट से यह देखती रही। उसने क्यारियों में ज़मीन के नीचे पक्की नालियाँ बनवा रखी थीं। उनसे पानी पड़ोस के खेतों में जाता था। उन खेतों के मालिकों से बुढ़िया सिंचाई का पैसा वसूल करती थी। जब खेतों ने पानी पी लिया तब क्यारियाँ कुछ भरने लगीं। दुष्ट का दिन भर बीत गया था। उसने न कुछ खाया-पिया था न आराम किया था।

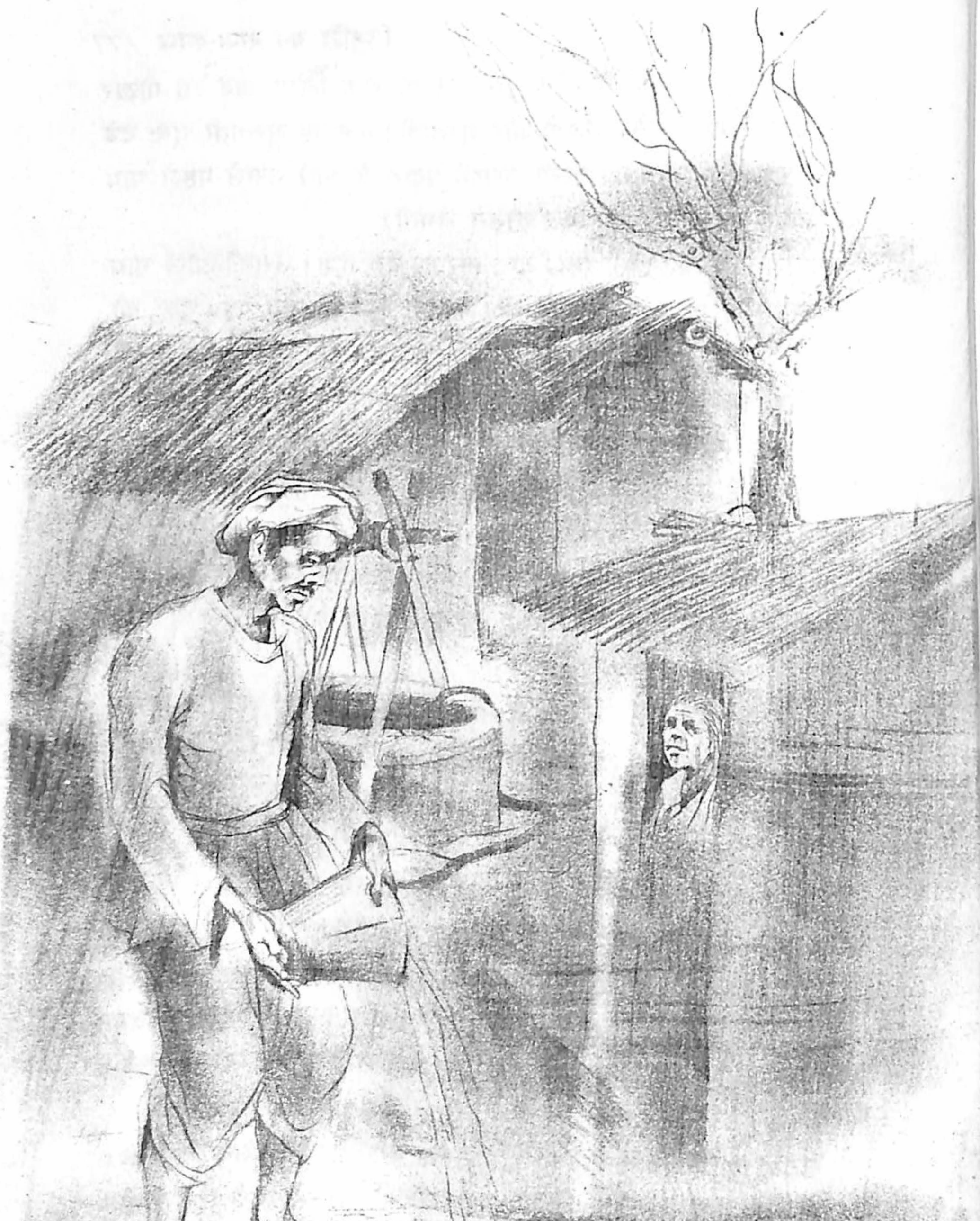

वह भी बुढ़िया को कोसता घर लौटा। उसने भी निश्चय किया कि जो उसके साथ बीता वह दूसरे दुष्ट को नहीं बतायेगा। उल्टे कहेगा, उसका काम इतना हल्का रहा कि बिना मेहनत के कुछ ही क्षणों में पूरा हो गया। वह दिन भर सोता रहा।

उस रात जब भोजन करके वे पुआल पर लेटे, उनके शरीर का एक. एक अंग दुख रहा था। एक मानो कोसों दौड़ा था, दूसरे ने मानो मनों बोझ ढोया था।

अगले दिन दोनों ने एक दूसरे के काम का अदल-बदल किया। तिरुचिरापल्ली के दुष्ट के साथ वही बीती जो पिछले दिन तंजावूर के दुष्ट के साथ बीती थी, वह दिन भर गाय के पीछे भागता रहा, और तंजावूर के दुष्ट के साथ वही जो तिरुचिरापल्ली के दुष्ट के साथ, वह डोल पर डोल पानी खींचता रहा पर क्यारियाँ भरने को नहीं आईं। शाम को जब दोनों मिले तो पहले एक दूसरे को खूब लताड़ा। नदी के किनारे आपस में सच्चे रहने और एक दूसरे को धोखा न देने का जो वचन दिया था, वह दोनों ने तोड़ा था। फिर साठ-गाँठ की कि उनके साथ धोखधड़ी करनेवाली बुढ़िया को मज़ा चखायेंगे।

बुढ़िया भी चौकस थी। उसने दुष्टों की बात सुन ली थी। मन-ही-मन हँसी। "बच्चू तुम नहीं जानते किस आफ़त की परकाला से पाला पड़ा है।"

दो तीन दिन बीत जाने पर एक सवेरे उसने उन्हें काम पर जाने से रोका। बोली : "मुझे विश्वास हो गया है कि तुम लगन से मेरी सेवा कर रहे हो और करते रहोगे। मेरे आगे पीछे कोई नहीं है। तुम ही मेरे अपने हो। मेरे पास जो कुछ है, वह सब तुम्हें ही मिलेगा। तुम बैठो, मैं अभी आई।"

कुटिया में अपनी खाट के नीचे से बुढ़िया एक संदूक़ खींचकर लाई। उसमें सोने-चाँदी के ज़ेवर थे, बरतन थे, सिक्के थे। दुष्टों की आँखें फटी की फटी रह गईं।

"ऐसे ही लगन से काम करते रहो। समय आने पर यह सब तुम्हारा होगा।

"बस, अभी तुम्हें एक काम करना है।"

"क्या ?"

"महीने का जब अँधेरा पखवाड़ा आता है मैं इस संदूक़ को टाट की कई परतों में लपेट कर कुएँ में डाल देती हूँ। जंगल में अकेली रहती हूँ।

इसकी टोह लेकर अँधेरे में कोई चोर-उचक्का उठाकर ले न जाये, इसलिये छिपा देती हूँ। जब उजला पखवाड़ा आता है, कुएँ से निकलवा कर संदूक़ को फिर घर ले आती हूँ।"

"तो माई, हमें क्या करना होगा ?"

"अँधेरा पखवाड़ा आरम्भ हो गया है। मैं चाहती हूँ कि कल रात मेरे साथ चलकर तुम इस संदूक़ को कुएँ में डाल आओ!"

दुष्टों के मन में लड्डू फूट रहे थे। वे सहर्ष मान गये।

दूसरे दिन जब वह घर में अकेली थी–बुढ़िया ने संदूक़ से सोने-चाँदी का सामान निकालकर एक पोटली में बाँधा और उसे एक गुप्त स्थान पर रख आई। संदूक़ में उसने कंकड़ पत्थर भर दिये। वे खड़खड़ न करें इसके लिये उन पर कपड़ा ठूँस दिया।

जब अँधेरा हो गया बुढ़िया ने संदूक़ की डोली बनाकर दोनों दुष्टों के कंधों पर लादी और पास के कुएँ में उतरवा आई। कुएँ में संदूक़ को ढकने भर के लिये पानी था। लौट कर बुढ़िया ने हलुआ बनाया और दुष्टों को भरपेट खिलाया।

बुढ़िया और दुष्ट अपनी-अपनी चाल चल रहे थे।

दुष्टों की आँखों में नींद कहाँ थी। जब वे आश्वस्त हो गये कि बुढ़िया सो गई है तब दबे पैर कुटिया से निकले और कुएँ तक पहुँचे। अपने साथ रस्सी लाये थे। तंजावूर के दुष्ट ने अपनी कमर में रस्सी कसी और तिरुचिरापल्ली के दुष्ट ने उसे कुएँ में उतार दिया। कोई आहट नहीं हुई।

कुएँ में जब तंजावूर के दुष्ट ने संदूक खोलकर टटोला तो भौंचक्क रह गया। ज़ेवर, बरतन, सिक्के सब ग़ायब थे। कंकड़-पत्थर भरे थे।

ऊपर तिरुचिरापल्ली का दुष्ट अधीर हो रहा था। उसने फुसफुसाते हुए पूछा : "संदूक़ मिल गया।" तंजावूर का दुष्ट छिपाना चाहता था कि बुढ़िया ने कैसी चोट की है। उसने उत्तर दिया : "संदूक़ में रस्सी कस रहा हूँ कसते ही झटका दूँगा। ऊपर खींच लेना। संदूक़ उतारकर मुझे चढ़ा लेना।"

"जल्दी कर, कहीं बुढ़िया की आँख न खुल जाये। सारा खेल चौपट हो जायेगा।"

"संदूक़ बहुत भारी है, होशियारी से चढ़ाना। रस्सी बीच में टूट गई और संदूक़ मेरे सिर पर गिरा तो मैं यहीं ढेर हो जाऊँगा।"

संदूक़ ऊपर खींचते ही तिरुचिरापल्ली के दुष्ट की नीयत में खोट आ

गया। क्यों न वह तंजावूर के दुष्ट को कुएँ में छोड़कर संदूक़ लेकर चम्पत हो जाये। उसने ऐसा ही किया।

वह कुछ दूर ही गया होगा कि उसे एक धीमी आवाज़ सुनाई दी।

"थोड़ा धीरे चलो मित्र।"

तिरुचिरापल्ली के दुष्ट ने चौंककर इधर-उधर देखा। कहीं, कोई नहीं था। उसे भ्रम हुआ कि उसके कान बज रहे हैं। उसने चाल और तेज़ कर दी। फिर आवाज़ आई : "मैंने कहा, थोड़ा धीरे चलो मित्र !"

वह फिर रुका । आवाज़ उतनी ही धीमी थी, पर पहचानी। तंजावूर के दुष्ट की। वह तो कुएँ में छटपटाकर दम तोड़ चुका होगा। कहीं, यह उसका भूत तो नहीं है?

वह घबरा गया। संदूक़ वहीं पटक कर भागा। पीछे से तंजावूर का दुष्ट पुकार रहा था : "मुझे धोखा देना चाहते थे। सोचा था मुझे कुएँ में मरने छोड़कर सब सोना-चाँदी लेकर भाग जाओगे। बुढ़िया हमारी भी गुरुघंटाल निकली। सब माल हटा कर संदूक़ में कंकड़ भर दिये। यह मैंने कुएँ ही में संदूक़ खोलकर जान लिया था। मुझे डर था, लालच में मुझे कुएँ से निकाले बिना तुम संदूक़ लेकर भाग जाओगे। मैंने कंकड़-पत्थर फेंककर संदूक़ में अपने को भर लिया। इसलिये संदूक़ भारी हो गया। समझे ?"

तिरुचिरापल्ली का दुष्ट रँगे हाथ पकड़ा गया था। उसने तंजावूर के दुष्ट से हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। दोनों दुष्टों ने फिर एक बार वचन दिया कि वे एक दूसरे को धोखा नहीं देंगे।

तंजावूर का दुष्ट बोला : "चलो, पहले कुटिया चलें। उस बुढ़िया की ख़बर लें, फिर आगे की सोचेंगे।"

वे जब कुटिया पहुँचे, उसके दरवाज़े पर साँकल जड़ी हुई थी। मोटा ताला लटक रहा था। उनका अपना सामान बाहर बिखरा पड़ा था।

दोनो दुष्टों के मुँह से एक साथ निकला :

"हम तो दुष्ट थे ही, बुढ़िया हमारे नहले पर भी दहला मार गई। हमें मात दे गई।"

दोनों दुष्टों ने कान पकड़े। ठगी का धंधा छोड़कर अपने-अपने घर लौट गये। उनमें ईमानदारी से जीवन जीने की भावना जाग गई थी।

10

निर्बुद्धि का राज-काज

दक्षिण भारत के उस पौंगा राज्य में मूढ़ वंश के राजा राज करते थे। उनमें एक राजा हुए अतिमूढ़। उनके बेटे थे महामूढ़। बेटे के बेटे का नाम था निर्बुद्धि। इन दिनों वही गद्दी पर बैठा था।

जैसा राजा था, वैसे ही उसके मंत्री थे। सब बुद्धिहीन। जो राजा कहता, बिना आगा-पीछा सोचे, उसका एकदम पालन करते। खाना, पीना, शिकार करना, सोना, ये ही राजा के शौक थे। राज रामभरोसे चल रहा था।

निर्बुद्धि के दरबार में एक राजपंडित थे। रोज़ सवेरे महल आते और पत्रा देखकर राजा को बताते कि आज क्या तिथि है, कैसे ग्रह हैं, दिन कैसा बीतेगा।

उस दिन राजा हाथ-मुँह धोकर कलेवे पर बैठा ही था कि पंडितजी पधारे। झोले से पत्रा निकाला और बाँचने लगे :

"श्रीमान, माघ का महीना चल रहा है। आज एकादशी है। वह रात के ग्यारह बजे चली जायेगी, उसके स्थान पर द्वादशी आयेगी। आपके राज में सुख शान्ति रहेगी।"

इतना कहकर पंडितजी ने विदा लेने के लिये राजा को प्रणाम किया और अपना पोथी-पत्रा समेटने लगे कि निर्बुद्धि क्रोध से भर गया। "हमारी आज्ञा के बिना पौंगा राज्य में कौन आ-जा सकता है ? मेरा आदेश है कि न एकादशी जाये, न द्वादशी आये। उन्हें रोकना होगा।"

कुछ मंत्री वहाँ उपस्थित थे। वे पंडित से कुढ़ते थे। बड़ा बुद्धिमान बनता है। उन्होंने राजा की हाँ में हाँ मिलाई। सब एक साथ बोले : "हाँ महाराज, आपकी आज्ञा बिना तो पेड़ का पत्ता भी नहीं खड़क सकता है। कोई आ-जा कैसे सकता है !"

पंडित समझाने लगा : "श्रीमान, एकादशी द्वादशी तो तिथियाँ हैं। वे कोई देहधारी जीव नहीं है। उन्हें हम आँख से नहीं देख सकते, स्पर्श नहीं कर

सकते, उनकी कोई आहट नहीं होती है। उनका जाना-आना नहीं रोका जा सकता है।"

"बकवास बंद कर मूर्ख पंडित !'राजा आपे से बाहर हो रहा था। "तूने" हमारी बात काटी है। हमारा अपमान किया है। हमारी आज्ञा के बिना न एकादशी का जाना होगा, न द्वादशी का आना।"

उसने अपने मुख्यमंत्री, मंदमति, को आदेश दिया कि पंडित को जेल में डाल दिया जाये। खाना-पीना न दिया जाये। वह भूखा मरे।

आदेश का पालन हुआ। सेवक पंडित को घसीटकर ले गये।

निर्बुद्धि मंदमति से परामर्श करने लगा। "यह पंडित कह रहा था कि तिथियाँ देहधारी नहीं होतीं। संसार में क्या कोई ऐसी वस्तु हो सकती है जिसे हम देख नहीं सकते ?"

"नहीं श्रीमान, कोई नहीं।"

"तो हमारी राजधानी पौंगानगर की हर रक्षा-चौकी को चौकस कर दो। कड़ी निगरानी रखी जाये। रात के ग्यारह बजे किसी को जाने दिया जाये न आने दिया जाये।"

"जी श्रीमान।"

"हो सकता है, एकादशी द्वादशी को जादू आता हो। वह कोई और वेश या रूप धारणकर पहरे से बच निकलने की कोशिश करे। सन्तरी चौकस रहें। हर वस्तु, जीव या निर्जीव, पशु या पक्षी पर निगाह रखें। जिसने भूल-चूक की, उसकी गरदन उतार दी जायेगी।"

"आपकी आज्ञा का पालन होगा श्रीमान !"

वहाँ उपस्थित अन्य मंत्रियों ने निर्बुद्धि की बुद्धिंमता का जी खोलकर गुणगान किया।

मंदमति बड़ा मगन था कि राजा ने यह मार्के का काम उसे सौंपा, सेनापति दुर्मति को नहीं। वह बड़ा इठलाता फिरता है कि मैं महाराज का मुख्य विश्वासपात्र हूँ। घर पहुँचते ही मंदमति ने रथ जुड़वाया और सारथी से कहा कि नगर की हर रक्षा-चौकी पर ले चले। हर चौकी पर राजा की आज्ञा सुनाई गई। हर सैनिक ने इसके पालन की प्रतिज्ञा ली।

जब मंदमति अन्तिम चौकी पर पहुँचा, रात के ग्यारह बजने में कुछ ही क्षण बचे थे। वह वहीं रुक गया। ग्यारह का घड़ियाल बजा। एक और आहट हुई। एक चूहा अपने बिल से निकला और जहाँ मंदमति खड़ा था,

उसके पास के बिल में घुस गया।

"अच्छा, तो एकादशी ने इस चूहे का रूप धारा है। उसे पकड़ो और टुकड़े-टुकड़े कर दो।"

सैनिक कुदालों से धरती खोदने लगे। बिलों में पानी भर दिया। रात बीत गई। चूहा न मिलना था न मिला।

जब यह समाचार निर्बुद्धि को मिला वो वह घोड़ा दौड़ाता हुआ उस चौकी पहुँचा। मंदमति हाथ बाँधकर सामने खड़ा हो गया। अपने को कोसने लगा।

"श्रीमान, मैं आपके आदेश का पालन नहीं कर सका। मैं एकदम निकम्मा हूँ। मुझे दण्ड दिया जाये।"

उसने सिर झुका दिया। जूता अपने सिर पर रख दिया।

निर्बुद्धि ने मंदमति को बहुत डाँटा पर दण्ड नहीं दिया। वह उसे बहुत प्रिय था। उसका सबसे आज्ञाकारी सेवक था। "दुखी न हो मंदमति। तुमने इतना काम तो किया कि पता लगा लिया कि एकादशी ने क्या रूप धारण किया है। उसका मुझसे बच निकलना असम्भव है। मै शिकारी हूँ। शेर मार सकता हूँ तो चूहे की क्या बिसात ?"

"आप ही यह काम कर सकते हैं। श्रीमान ! आप जितने वीर हैं उतने ही चतुर हैं।"

"मंदमति, मैं अपने साथ एक सैनिक टुकड़ी ले रहा हूँ। एकादशी को बंदी बनाकर ही पौंगानगर लौटूँगा। जब तक मैं नहीं आऊँ यहाँ का राजकाज तुम संभालो।"

मंदमति को डर था उसे कठोर दण्ड मिलेगा। राजा ने अपने पीछे उसे राजकाज सौंप दिया। वह गद्‌गद् हो गया। हर्ष से आँखें छलक आईं।

"श्रीमान, आप दयालु हैं, आप महान हैं, आप धन्य हैं।"

निर्बुद्धि ने सैनिक बल के साथ चूहे की खोज में कूच किया। चूहा हो या घूस, जैसे ही सैनिक देखते, उसके पीछे दौड़ते। वे बिल में घुसते और ग़ायब हो जाते। सैनिक बिल खोदते, उनमें पानी भरते पर कुछ हाथ नहीं लगता। कई सवेरे आये, कई शामें हुईं। सैनिक थक गये। निर्बुद्धि अपनी हठ पर था। उसके सामने भला कौन मुँह खोल सकता था ?

इधर मंदमति राजकाज चला रहा था। दिन-रात लगा रहता। सबको प्रसन्न रखता। किसी को 'ना' नहीं कहता। वह रानी का विशेष ध्यान रखता। उसे कोई कष्ट न हो। रोज़ महल जाता। कुशल पूछता। रानी संतुष्ट थीं।

रात हो गई थी। कामकाज निबटा कर मंदमति सोने जा रहा था कि रानी की दासी चतुरा, गुहार लगाती आई : "मंत्रीजी, मंत्रीजी, अनिष्ट होने जा रहा है।"

मंदमति ने दासी की घबराहट का कारण पूछा।

"मंत्रीजी, रानीजी चैन से सो रही थीं। मैं सिरहाने खड़ी पंखा कर रहा थी कि उनके मुँह से हाय निकली।"

"हाय ?"

"हाँ मंत्रीजी, हाय। मैंने अपने कान से सुनी, हाय।"

"उन्हें कोई कष्ट है? कभी कुछ कहा है ?"

"नहीं मंत्रीजी।"

"उनके किसी आदेश का पालन नहीं हुआ है।"

"नहीं।"

"तो फिर ?"

"मैं क्या जानूँ मंत्रीजी ? जैसे ही उनके मुँह से हाय सुनी, आपके पास दौड़ी आई हूँ।"

"चिन्ता मत् करो चतुरा। कभी ऐसा हो जाता है। कोई बुरा सपना देख लिया हो। जाओ, सोना मत। रानी के पलंग के सिरहाने खड़ी रहना। दुबारा हाय निकले तो मुझे बताना।"

चतुरा के जाते ही मंदमति सोच में पड़ गया। रानी ने हाय क्यों की? उसे नींद आ रही थी लेकिन वह सोना नहीं चाहता था। यह संकट की घड़ी थी। बार-बार मुँह पर पानी के छींटे डालता। तनिक-सी आहट होती और उसे लगता दासी आ रही है।

रात आधी भी न बीती होगी कि दासी फिर दौड़ी आई। पहले से अधिक घबराई हुई। रानी ने फिर हाय की थी।

"एक बार कि दो बार ?"

"एक बार।"

"तुम उन्हें हवा कर रही थी ?"

"जी।"

"देखो चतुरा, शान्ति रखो। अभी कुछ नहीं हुआ है। हाँ, यदि रानीजी सोते में दो बार हाय करें, जल्दी, जल्दी तो समझना उन्हें किसी साँप ने डस लिया है। तब इलाज़ के लिये राजवैद्य को बुलाना होगा। जाओ, रानीजी

के पास रहो। दो बार हाय करें तो एकदम बताना। मैं जागता रहूँगा।"

मंदमति ने दासी को शान्त रहने की सलाह दी थी किन्तु उसके अपने मन की शान्ति समाप्त हो गई थी। वह भगवान की मूर्ति के सामने जाकर बैठ गया। माला जपने लगा।

इस बार दासी घोर विलाप करती आई।

"मंत्रीजी, अनर्थ हो गया। रानीजी ने दो बार हाय भरी फिर आँखें खोलकर इधर-उधर देखा और बंद कर लीं।"

मंदमति ने राजवैद्य को बुलाने सेवक दौड़ाया। वह पड़ोस के किसी गाँव गया हुआ था। उसका बेटा था। वह वैद्यक सीख रहा था। वह आया। उसे देखकर मंदमति उबल पड़ा : "वैद्यजी कहाँ हैं, वह क्यों नहीं आये ?"

"श्रीमान, पिताजी बाहर गये हुए हैं। कल सवेरे लौटेंगे। मैं भी उनके चरणों में बैठ कर वैद्यक सीख रहा हूँ। मैं कोई सेवा कर सकता हूँ ? आज्ञा कीजिये।"

"रानीजी को सोते में साँप ने डसा है। तुम विष का उपचार कर सकते हो ?"

"श्रीमान मेरा ज्ञान अधूरा है। मैंने विष के बारे में अभी शिक्षा नहीं पाई हैं। हाँ, पिताजी को यह कहते अवश्य सुना है कि साँप काट ले तो सिर तक विष फैलने से पहले उपचार हो जाना चाहिये। नहीं तो जान बचाना कठिन क्या, असम्भव हो जाता है।"

"हूँ। तुम्हारा नाम क्या है ?"

"ज्ञान शत्रु, श्रीमान !"

"तो ज्ञानशत्रु, तुम्हारी क्या सलाह है ?"

"बिना किसी देर के सिर को धड़ से अलग कर दिया जाये। वह विष फैलने से बच जायेगा। सवेरे पिताजी के आते ही शेष उपचार शुरू हो जायेगा।"

सलाह मंदमति को जँच गई। "ज्ञानशत्रु, हम प्रसन्न हुए। तुम वैद्यजी के होनहार पुत्र हो।"

फिर दासी को आदेश दिया। "चतुरा, शीघ्र महल लौट जाओ। रानीजी अभी नींद में होंगी। कटार से उनका सिर काट कर वहीं, बिछौने पर, धड़ के पास, रख देना। यह काम बिल्कुल चुपचाप हो। कोई रोके-टोके तो हमारी

मुद्रा दिखा देना।"

मंदमति ने उँगली से मुद्रा उतारकर चतुरा को दे दी। साथ में कुछ सोने की मोहरें भी।

रानी का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। उसके प्राण निकल गये।

सवेरे राजवैद्य पौंगानगर लौटा। ज्ञानशत्रु ने समाचार दिया। यह सुनते ही कि बेटे के सुझाव पर रानी का सिर धड़ से अलग कर दिया गया है, वैद्य के पसीने छूट गये। उसे लगा कि अब उसका और बेटे का सिर भी बहुत देर तक धड़ पर नहीं रहेगा।

वह महल के लिये रवाना हुआ। रास्ते भर जान बचाने का उपाय सोचता रहा। मंदमति उसकी राह देख रहा था। वैद्य को सीधा रानी के कक्ष में ले गया। कक्ष की सब खिड़कियाँ बंद थीं। वैद्य को बचने का उपाय मिल गया। वह सिर पीटने लगा। उसने मंदमति से पूछा : "श्रीमान, ये खिड़कियाँ किसने बंद करवाईं ?"

प्रश्न से मंदमति को विस्मय हुआ। "क्यों, मैंने। उससे क्या हुआ ?"

चतुर वैद्य बोला : "कटे सिर को खुली खिड़की में रखना चाहिये था। उसे साँस लेने के लिये ताज़ा हवा चाहिये थी। इस घुटन में उसका साँस लेना बंद हो गया।"

"फिर,"

"अब कुछ नहीं हो सकता श्रीमान। रानीजी के प्राण-पखेरू उड़ चुके हैं।"

मंदमति घबराया। रानी की हत्या का दोष उसी पर मढ़ा जा रहा था। राजा, प्रजा, उसे कोई क्षमा नहीं करेगा।

उसका एक घना मित्र वहाँ खड़ा था। नाम था, जड़मति। मंदमति को इशारे से एक ओर बुलाकर उसके कान में कहा : "मित्र, सुनो। पहले इस वैद्य और दासी का मुँह बंद करने के लिये इन्हें सोने की कुछ मुद्राएँ देकर यहाँ से विदा करो। फिर इस झंझट से निबटने की तरकीब बताऊँगा।"

मुद्राएँ लेकर वैद्य और दासी मुँह पर हाथ रख कर वहाँ से चले गये। जड़मति मंदमति के पास आकर कान में फुसफुसाया : "नगर में और कोई नहीं जानता है कि रानी कैसे मरी हैं। उनकी अर्थी बाहर निकलते ही, कटा सिर देखकर, लोग सवाल करने लगेंगे। तुम पर शंका करेंगे। राजा एकादशी की खोज में गए हुए हैं। न जाने कब लौटें। तब तक रुका नहीं जा सकता।

तुम रानी का दाहकर्म यहीं कर दो।"

"यानी, इसी कक्ष में ?"

"हाँ। अपने सेवकों से चंदन की लकड़ी इकट्ठा करने को कहो। प्रजा से कह देंगे, रानीजी को काले नाग ने काटा था। वैद्यजी के पहुँचने के पहले उनके प्राण निकल गये। जिस स्थल पर उन्होंने प्राण त्यागे थे, उनकी आत्मा की शान्ति के लिये, वहीं दाहकर्म कर दिया गया।"

जड़मति की बुद्धि से मंदमति चकित हो गया। उसने वैसा ही किया।

चिता की लपटों ने सारे कक्ष को अपनी लपेट में ले लिया। बुझाने की कोशिश बेकार रही। आग महल में फैलने लगी। धुआँ आसमान में उठने लगा। नगर में जलन की दुर्गन्ध फैल गई। लोग घरों से निकल आये। हाहाकार मच गया।

मंदमति को काठ मार गया। कुएँ से निकला तो खाई में गिर गया। वह एक कोने में जाकर बैठ गया।

पर जड़मति हार माननेवाला नहीं था। मंदमति को झिंझोड़कर बोला : "मित्र मेरे, यह हाथ पर हाथ धरकर बैठने का समय नहीं है। हमारी परीक्षा की घड़ी है।"

"तो मै क्या करूँ ?"

"मैं बताता हूँ। मेरे पास इससे भी उबरने का उपाय है।"

मंदमति तिनके का सहारा ढूँढ़ रहा था। बड़ी उत्सुकता से पूछा : "क्या है ?"

"वह सामने जो पहाड़ी है, वहाँ एक बाँध है।"

"हाँ, है।"

"यह नगर और महल उसके नीचे, घाटी में है ?"

"हाँ।"

"तो नगर में ढिंढोरा पिटवा दो कि महल की आग बुझाने के लिये बाँध तोड़ा जा रहा है। अपनी जान बचाने के लिये लोग पहाड़ी पर चले जायें या पेड़ों पर चढ़ जायें।"

"और हम कहाँ जायेंगे ?"

"हम दोनों बाँध की दीवार पर चढ़कर यह दृश्य देखेंगे। जब पानी बह जाये, तब सब लौट सकते हैं।"

मूढ़ कुल के वंशज निर्बुद्धि के राज में मुख्य मंत्री मंदमति और उसके

मित्र जड़मति की जोड़ी की कृपा से राजधानी पौंगानगर में यह होना था, और हुआ। हाँ, जड़मति ने अपनी जान से हाथ धोये। बाँध की दीवार पर खड़ा, पानी से महल की आग को बुझता देखकर, वह अपनी बुद्धि के कमाल से जोश में भरकर ऐसा उछला कि उसका पैर फिसल गया और पानी की धारा में बहकर वह उसी में समा गया। मंदमति आँखें फाड़े यह देखता रहा। अपने मित्र को नहीं बचा पाया।

इस सारी घटना की सूचना निर्बुद्धि को देना आवश्यक था। मंदमति ने उसे एक पत्र लिखा। विस्तार से पूरी कथा बताई। रानी का सिर काटने की बात छिपा गया। इतना ही लिखा कि राजवैद्य ने उन्हें बचाने की भरसक कोशिश की। चतुरा ने बड़ी लगन से, जान ज़ोख़िम में डाल कर उनकी सेवा की। रानी की मृत्यु पर मंदमति ने गहरा शोक प्रकट किया। मित्र जड़मति की, उसकी अमूल्य सहायता के लिये, सराहना की। उसने अपने जीवन का बलिदान दिया। उसके परिवार को एक हज़ार सोने की मुद्रा देने का प्रस्ताव किया। जिन नगरवासियों के घर पानी की चपेट में आ गये थे, उन्हें भी हर्ज़ाने में कुछ धन देने का सुझाव दिया।

मंदमति के भरोसे के दो सेवक थे, पशुबली नायक और चलतू मियाँ। दोनों में होड़ लगी रहती थी कि कौन, कैसे मालिक के अधिक निकट पहुँचे और लाभ पाये। पत्र ले जाने को चलतू को चुना गया। पशुबली डंड पेलता रह गया।

अगले दिन सूरज निकलने से पहले चलतू मियाँ घर से निकल पड़ा। राजा के नाम मंदमति का पत्र उसने अपनी छाती से लगा रखा था। वह दिन भर चलता रहा। उसे धूप की चिन्ता थी न भूख प्यास की। सूरज ढलने पर वह एक पेड़ के तले विश्राम के लिये लेट गया। थकान से चूर था। नींद ने आ घेरा। रात-भर सोता रहा। पता ही न चला कब चिड़ियाँ चहचहाने लगीं। उसकी नींद अभी तक नहीं टूटी थी।

पास ही एक बस्ती थी। वहाँ का चम्पू नाई, हाकिम की हज़ामत बनाने जाता था। हाकिम रोज़ हज़ामत में कोई न कोई खोट निकालता। चम्पू को डर था कि उसकी रोज़ी पर बन आयेगी। उस दिन बड़ी मेहनत से चम्पू ने उस्तरे को तेज़ से तेज़ धार दी थी। उसे विश्वास था कि आज हाकिम प्रसन्न हो जायेगा। रास्ते में उसने चलतू को पेड़ के नीचे सोता देखा। वह खर्राटे भर रहा था। उसकी दाढ़ी बड़ी हुई थी। चम्पू ने सोचा, अगर मैं बिना

जगाये इसकी हज़ामत बना सकूँ तो मेरे उस्तरे की धार की जाँच हो जायेगी।

उसने बिना आहट के अपना काम चालू कर दिया। पहले चलतू की दाढ़ी मूँडी फिर मूँछें ऐसी कार्टी मानो ताव देने के लिये चढ़ा रखी हैं। चलतू सोता रहा।

जब नींद टूटी तो उठने से पहले 'या अल्लाह' कह कर उसने मुँह पर हाथ फेरा। यह क्या, उसकी दाढ़ी कहाँ गई ? थैले से शीशा निकालकर अपनी शक्ल देखी। दाढ़ी साफ़ थी, मूँछें तनी हुई थीं। देखने में, वह चलतू नहीं, पशुबली नायक लग रहा था।

चलतू हैरान था। रह-रहकर अपने से पूछ रहा था : "यह मै हूँ, चलतू मियाँ या पशुबली नायक ? पौंगानगर से तो मैं चलतू ही चला था, रात-रात में पशुबली कैसे बन गया ? यह उस नायक के बच्चे का ही जादू है। यह काम पूरा हो जाये, लौटकर उसे देख लूँगा।"

उसने छाती पर हाथ फेरा। उसे टटोला। मंदमति का पत्र तो वहाँ सुरक्षित था।

जब चलतू निर्बुद्धि की हाज़िरी में पहुँचा, राजा बहुत दुखी था। एकादशी को अभी तक नहीं पकड़ पाया था। चलतू ने झुककर सलाम बजाई। निर्बुद्धि ने पूछा : "कैसे आना हुआ पशुबली ? सब कुशल तो है !"

पशुबली ? तो राजा भी उसकी शक्ल से धोखा खा गये? चलतू कड़वा घूँट पीकर रह गया। पत्र आगे बढ़ाते हुए कहा, "हुजूर, यह मुख्य मंत्री जी ने आपके नाम भेजा है।"

निर्बुद्धि पत्र पढ़ने लगा। आरम्भ में मंदमति ने लिखा था कि राज काज कैसा चल रहा है ! निर्बुद्धि प्रसन्न हुआ। "हम जानते थे मंदमति सब सम्भाल लेगा।" जब रानी की मृत्यु और दाहकर्म के समाचार तक आया तो इतना ही बोला : "ओह, रानी मर गई। हमें दुख हुआ। बहुत अच्छी थी। दाहकर्म के लिये हमारे लौटने तक रुकना मूर्खता होती।"

जैसे ही महल की आग बुझाने कि लिये बाँध तोड़ने का समाचार पढ़ा, निर्बुद्धि कसमसाया।

"बाँध में हमने दूर-दूर से मछलियाँ मँगाकर पाल रखी थीं। उनका क्या हुआ ? मंदमति ने उनके बारे में कुछ नहीं लिखा है।"

चलतू को अवसर मिल गया। "आप चिन्ता न करें श्रीमान ! मैं वहाँ मौजूद था। जैसे ही बाँध से पानी बहने लगा, मछलियाँ बाँध के पुश्ते पर खड़े, बबूल

के पेड़ों पर चढ़ गईं। उन्होंने पेड़ों पर अपने घोंसले बना लिये हैं। मैंने अपनी आँखों से देखा है।"

"पशुबली, इस शुभ समाचार के लिये हम तुम्हें यह मोतियों का हार इनाम में देते हैं। लौटने पर तुम्हें मुख्यमंत्री बनायेंगे। यह मंदमति बड़ा निकम्मा है। उसने हमें मछलियों का समाचार नहीं दिया।"

निर्बुद्धि ने अपने गले से हार उतार कर चलतू के गले में डाल दिया। उसने झुककर सलाम बजाया। मन में निश्चय किया, अभी नहीं, सही मौके पर राजा को बता दूँगा कि मैं पशुबली नहीं, चलतू हूँ।

निर्बुद्धि के गले से एक दबी हुई आह निकली, "हे भगवान, यह एकादशी बड़ा छलिया निकला। हमें यहाँ फँसा रखा है। हम उसे कब पकड़ पायेंगे और बंदी बनाकर अपनी राजधानी लौटेंगे।"

जहाँ निर्बुद्धि का शिविर था, वह स्थान करवटनगर के पास था। वहाँ एक बुद्धिमान ब्राह्मण रहता था। उसे निर्बुद्धि की एकादशी की खोज की जानकारी थी। ब्राह्मण को राजा के पागलपन पर तरस आया। उसने निर्बुद्धि को मुक्ति दिलाने का उपाय निकाला।

एक सजी हुई पालकी मँगवाई। कहारों को आदेश दिया कि "रास्ता छोड़ो, रास्ता छोड़ो" की आवाज़ लगाते हुए राजा के शिविर के बीच में से ले चलें। कोई पूछे कि कौन आ रहा है, तो कह दें, "एकादशी ब्राह्मण की सवारी है।"

शिविर में पहुँचते ही सैनिकों ने पालकी को रोका। जैसे ही उन्होंने एकादशी ब्राह्मण का नाम सुना, एक सैनिक को महाराज को सूचना देने दौड़ाया।

निर्बुद्धि ने भगवान को धन्यवाद दिया। "एक वर्ष की कठिन तपस्या के बाद यह घड़ी आई है। इस ब्राह्मण का नाम एकादशी है तो इसी से द्वादशी का भी अता-पता मिल आयेगा।"

निर्बुद्धि ने पालकी तक पहुँचकर ब्राह्मण देवता को आदर दिया। अनुरोध किया कि उसके शिविर में पधारकर अपने चरणों की धूल डालें।

"क्षमा करें राजन, मैं जल्दी में हूँ। आपके सत्कार के लिये फिर कभी आऊँगा। अवश्य आऊँगा।"

"देवता, मेरा एक प्रश्न है। उसका उत्तर तो देते जाइये। मेरे इस भटकने का कब अन्त होगा ? मैं एकादशी को कब बंदी बना पाऊँगा, वह तो नित नये रूप धरता रहता है।"

"राजन, हम लोग इस संसार के देहधारी जीव है। एकादशी देवता है। हम उसे बंदी नहीं बना सकते। इतना आपको बता दूँ। आप एक वर्ष से अपनी राजधानी से बाहर हैं। इस बीच, चौबीस बार वहाँ एकादशी का आजा-जाना हो चुका है। और द्वादशी का भी। ऐसा हर महीने में दो बार होता है।"

"यह कैसे हो सकता है ? मैंने तो उसे कभी चूहे, कभी घूस, कभी बंदर, कभी किसी और रूप में यहाँ-वहाँ दौड़ते, भागते देखा है। यह असम्भव है यह आपका भ्रम है।"

"श्रीमान, मैं आपसे एक प्रश्न करता हूँ। बहुत ही सरल प्रश्न है। मैं आपकी कोई परीक्षा नहीं ले रहा हूँ। क्या आप सूर्य के प्रकाश को अपने राज्य में आने जाने से रोक सकते हैं ?"

"नहीं।"

"क्या वायु को, वर्षा को, तूफ़ान को रोक सकते हैं ?"

'नहीं।"

"तो सुनिये श्रीमान ! एकादशी की यात्रा सूर्य के साथ होती है। सूर्य पौंगानगर रोज़ आता-जाता है। एकादशी, द्वादशी या कोई भी और तिथि रोज़ नहीं, पन्द्रह दिन में एक बार आती-जाती है। न आप सूर्य को रोक सकते हैं, न किसी तिथि को।"

निर्बुद्धि को ज्ञान प्राप्त हो गया। वह सन्तुष्ट होकर अपनी राजधानी लौटा। वह ब्राह्मण देवता को मनाकर अपने साथ ले आया। उन्हें मुख्यमंत्री बनाया। कई वर्षों तक राज किया। प्रजा बड़ी सुखी थी।

निर्बुद्धि अब सुबुद्धि बन गया था।

संदर्भ

सोनाबाई

गुजराती, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८८६, अंक १५

संग्रहकर्ता, पुतलीबाई डी. एच. वाडिया

उसका भाग्य जागा

गुजराती, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८९३, अंक २२

संग्रहकर्ता, पुतलीबाई डी. एच. वाडिया

रबाड़ी से राजा

गुजराती, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८८६, अंक १५

संग्रहकर्ता, पुतलीबाई डी. एच. वाडिया

चतुर किसान और लोभी व्यापारी

बांङ्ला इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८७४, अंक ३

संग्रहकर्ता, डी. एच. डैमैन्ट

पंजफूलरानी

पंजाबी, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८८२, अंक ११

संग्रहकर्ता, मिसेज एफ़. ए. स्टील

फ़ातेह खाँ उर्फ़ फत्तू का कमाल

कश्मीरी, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८८२, अंक ११

संग्रहकर्ता, मिसेज एफ़. ए. स्टील

बुद्धू कौन सयाना कौन

बाङ्ला, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८७४, अंक ३

संग्रहकर्ता, डी. एच. डैमैन्ट

एक था सूरज, एक था चाँद

संताली, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८७५, अंक ४

संग्रहकर्ता, एफ़ टी. कोल

एक से बढ़ कर एक

तमिल, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८९६, अंक २५

संग्रहकर्ता, एस. एम. नटेश शास्त्री

निर्बुद्धि का राज-काज

तमिल, इंडियन एन्टीक्वैरी, वर्ष १८९१, अंक २०

संग्रहकर्ता, एस. एम. नटेश शास्त्री

115977
17.11.04

निर्बुद्धि का राज-काज में संकलित कहानियाँ पुरानी और परिचित भारतीय लोक-कथाएँ हैं । हिन्दी के अनगिनत किशोर पाठकों तक पहुँचाने के लिए इन्हें यहाँ-वहाँ व्यवस्थित किया गया है। इससे इन कहानियों का स्वर मुखर और निवेदन प्रभावी हो गया है । इन कहानियों के प्रस्तुतकर्त्ता **श्री गोपाल दास** ने आधी सदी पहले अजमेर के मैगज़ीन स्थित संग्रहालय में अंग्रेज़ी पत्रिका 'इण्डियन एन्टीक्वेरी' के अंकों में इन्हें पढ़ा था । इन्हें पढ़ने के बाद हिन्दी में इनका भाषांतर करने की साध उनके मन में रची-बसी थी, जो अब इतने सालों बाद पूरी हो पायी है । ऐसी ही कहानियों ने भारतीय भाषाओं के लाखों पाठकों में रचनात्मक ऊर्जा और कल्पनात्मक क्षमता का विस्तार किया है ।

साहित्य अकादेमी को विश्वास है कि ये कहानियाँ अपने पाठकों को अपनी गौरवपूर्ण लोक-कथाओं के और भी निकट ले आयेंगी ।

Library IIAS, Shimla
H 028.5 D 26 N
00115977

ISBN:81-7201-996-3
तीस रुपये